मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

श्री हेमचन्द्राचार्य

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

४८

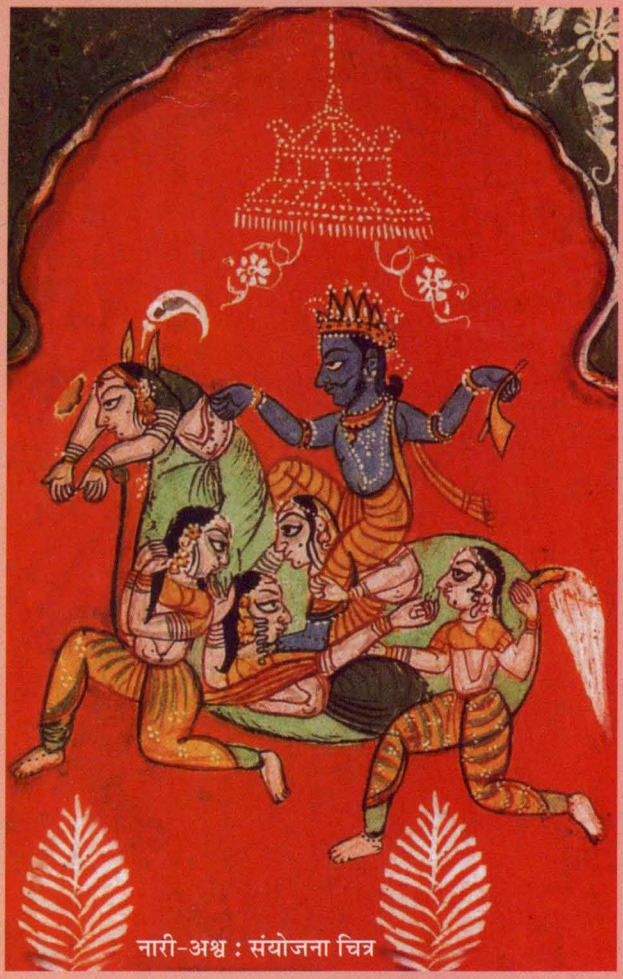

नारी-अश्व : संयोजना चित्र

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2009

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

४८

सम्पादकः
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२००९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धान ४८

आद्य सम्पादक: **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक: **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क: C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थान: (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

मुद्रक:

क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

संशोधन अने परम्परा ए बन्ने वच्चे हमेशां गजग्राह ज होय छे, एवुं नथी. घणीवार आ बे वच्चे सामंजस्य पण ओछुं नथी होतुं. क्यारेक तो, बन्ने तत्त्वो पोतपोतानी दिशामां अने वातमां अडोल रहीने पण परस्पर सामंजस्य अने सौमनस्य जाळवतां जोवा मळयां छे, मळे छे. ज्यां सुधी आ बन्नेना सम्बन्ध पर कट्टरतानो ओछायो न पडे, अने सहज औदार्य प्रसरतुं रहेतुं होय, त्यां सुधी तो आ स्थिति अनुभववा अचूक मळवानी.

आ समजणने पुष्ट करे तेवो एक प्रसंग ताजेतरमां ज बन्यो. एक कट्टरपंथी पण अभ्यासी अने ते ज कारणे सुज्ञ एवा, उंमरलायक मुनिराजे मने कह्युं : **ढांकीए** तो नवकार माटे केवुं लख्युं छे ! बे ज पद हतां वगेरे. आवुं ते केम मनाय ?

में तेमने समजाव्या : **ढांकी** अने तेमना जेवा विद्वानोने नवकारनां पांच, नव पदो तमे मानो तेनो विरोध नथी होतो. तेमने तो पुरातात्त्विक प्रमाणो द्वारा सांपडतां तथ्योने उजागर करवामां ज रस पडे छे. अने तेवां साक्ष्यो थकी जे तथ्य सांपडे, तेने समाज समक्ष मूकीने, समाजमां, आ पदोने कारणे चालती भ्रान्तिओ तथा विवादो केटली हदे साचा के योग्य गणाय, ते तरफ अङ्गुलिनिर्देश करवामां ज तेओनुं कर्तव्य समाप्त थतुं होय छे.

''जुओ, महामेघवाहन सम्राट् खारवेल जैन राजवी हतो. तेणे सर्वप्रथम जैन साधुसंघनी संगीति योजी हती. तेनो शिलालेख **खण्डगिरि-उदयगिरिनी गुफामां** उपलब्ध छे. तेमां बे ज पदो आलेखायां छे : **'नमो अरहंतानं, नमो सवसिधानं;** हवे आ विद्वानो एम पूछे अथवा विचारे के गुफामां पांच पद लखवा जेटली जग्या तो होय ज, तो बेज पद केम लख्यां हशे ? बीजो आवोज गुफालेख **महाराष्ट्रमां पाळेनी गुफामां** उपलब्ध छे. त्यां तो वळी **'नमो अरहंतानं'** एम एक ज पद छे, तो तेनुं शुं समजवुं ?

''वळी, घणुं करीने 'आवश्यकचूर्णि'मां क्यांक ३ ज पदो निर्देशायां छे : ''**नमो अरहंताणं, नमो सव्वसिद्धाणं, नमो सव्वसाहूणं**'' तो 'सव्वसाहूणं'' मां ज 'आयरियाणं' तथा 'उवज्झायाणं' नो समावेश 'सव्व' शब्द वडे करवामां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आव्यो होय तेवुं न मनाय ?

''जेम 'चत्तारि मंगलं'ना प्रसिद्ध पाठमां क्यांय 'आयरिया' तथा 'उवज्झाया' मंगलं नथी आवतुं, 'साहू मंगलं' मां ज ते बे पदो समाई जतां होवानुं सर्वस्वीकृत छे, तेम आ नवकार-मंगल परत्वे पण न समजवुं जोईए ?''

आ विद्वानो, में ए वृद्ध मुनिने समजाव्या, उपलब्ध पुरातात्त्विक साक्ष्योने आधारे आवी सम्भावनामात्र रजू करे छे. अने ते सन्दर्भमां तेमनी वात साव नगण्य के विचारने पण अयोग्य-एवी तो नथी ज. परन्तु, ए विद्वानो, तमे ५ पद मानो तो ते खोटुं छे, एवुं कहेवा जराय इच्छता नथी. तेओ तेनो विरोध के निषेध करवा माटे अथवा मान्य परम्पराने भ्रष्ट करवा माटे आवुं लखे छे एवुं नथी. तमे ५ के ९ पद मानो, तो एक सामान्य धर्मपरायण मनुष्य अथवा जैन गृहस्थ लेखे **ढांकी** पण ५ पदने श्रद्धापूर्वक सांभळे छे, स्वीकारे छे. तेमनी रजूआत तो मात्र संशोधननी रीते नवकार-मंगलना पाठमां थयेल क्रमिक विकास परत्वे ज छे. अने संशोधन एटले परम्पराना ढांचाने हचमचाववानी प्रक्रिया ज तो ! आमां आपणे नाराज थवानुं के धर्मद्रोह समजीने तूटी पडवानुं कोई ज कारण नथी.

मारा विस्मय वच्चे, कट्टरपंथी गणाता ए मुनिराजे मारी वातना हार्दने सद्भाव साथे प्रमाण्युं, स्वीकार्युं. ते क्षणे मने थयुं के संशोधन अने परम्परा वच्चे, पोतपोतानी वातमां अडग रहेवा छतां, विरोध के वैमनस्य जेवुं क्यां रहे छे ? प्रश्न मात्र विवेकपूर्वक समजवानो ज छे.

*

परम्पराने संशोधन सामे मोटामां मोटो वांधो होय तो ते एक ज वाते छे : संशोधको हमेशां जैन परम्पराना के भारतीय परम्पराना पूजनीय गणातां तत्त्वोने तुच्छकारथी ने तोछडाईथी नवाजे छे, ते वाते. दा.त. अे लोको भगवान महावीर माटे कहेशे : ''महावीर ए जैनोनो छेल्लो तीर्थंकर हतो.'' अथवा तो हेमचन्द्राचार्य जेवा जैनाचार्य माटे लखशे : ''हेमचन्द्र ए सिद्धराजनी सभानो सभ्य हतो,'' ''हरिभद्रे घणा ग्रन्थो रच्या हता; ते पोताना समयनो मोटो विद्वान मनातो हतो.''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन-सम्बद्ध तत्त्वो माटे ज शा माटे ? तेओ तो जगद्गुरु शङ्कराचार्यने माटे पण 'शङ्कर'' एवो तुच्छतासूचक प्रयोग ज करता होय छे.

आनां मूळ तपासतां एम लागे छे के अंग्रेज अने जर्मन विद्वानोए जे संशोधनो कर्यां, ते तेमनी भाषाओमां कर्यां. हवे तेमने माटे भारतवर्षना आचार्यो के जिन/बुद्ध जेवी विभूतिओ ते कोई सामान्य विद्वान्थी विशेष न हता. तेथी तेमणे तेमना विषे ज्यां पण उल्लेख कर्यो त्यां तुच्छतावाचक एकवचन वडे ज कर्यो.

आम पण, अंग्रेजी भाषामां एक थी वधु व्यक्तिओ माटे ज बहुवचन प्रयोजाय छे. एक व्यक्ति होय तो एकवचन ज प्रयोजातुं होय छे. जेमके -

''He Speaks; Mahavira said; Hemchandra was a great Scholar'' वगेरे.

हवे आनो गुजराती अनुवाद (तरजूमो नहीं), संस्कारी अने आपणा देशनी शिष्टमान्य तथा सभ्य एवी परम्परामां उछरेल के परम्पराने जाणनार व्यक्ति/विद्वान, आ प्रमाणे करी शके : ''तेओ कहे छे; महावीर कहेता हता; हेमचन्द्र ते मोटा विद्वान हता.'' परन्तु जे लोको कोरी अंग्रेजीयतने ज महत्त्व आपे छे, अने आपणी संस्कृतिनां शिष्ट धोरणो प्रत्ये जेमने झाझो आदर नथी, तेवा लोको आम लखशे : ''ते कहे छे; महावीर कहेतो हतो; हेमचन्द्र मोटो विद्वान हतो.'' आ बन्ने प्रकारना अर्थ वांचीए तो अनुवाद अने तरजूमा वच्चेनो तफावत पण तुरत समजाशे.

'अने आ विद्वानो क्यारे पण 'हरमान जेकोबी आम कहेतो हतो', 'सुखलाल आवुं मानतो हतो' - एवा प्रयोगो भूलमां पण नहि करे, ए वात पण ध्यानपात्र छे. परम्परा एटलुं ज पूछे छे के धर्मक्षेत्रे अग्रणी गणाता पुरुषो माटे तुच्छकार, अने संशोधनक्षेत्रना लोको माटे आदर-आवो भेद शा माटे ? आनुं कारण शुं ? पाश्चात्य विद्वानो आधुनिक शोध-विद्याना प्रवर्तक छे, ए वात स्वीकारी लीधा पछी पण, एमनी भाषागत मर्यादाओने गुजराती के हिन्दी भाषामां खेंचीताणी लाववानी शी जरूर ? एमनी तोछडाईनो अनुवाद आपणी भाषामां न करीए तो संशोधनक्षेत्रनुं कांई ज बगडी के अटकी तो नथी जतुं !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्पराने संशोधन सामे जो मुख्य फरियाद होय तो ते आटली ज छे. हेमचन्द्राचार्यने ''प.पू. आचार्य भगवानश्री'' एवां साम्प्रदायिक विशेषणो साथे उल्लेखे नहि तो ते अंगे कोई फरियाद नथी - न होय; पण 'हेमचन्द्र' एवुं कायम कहेवाने बदले 'हेमचन्द्राचार्य' 'शङ्कराचार्य' एटलो औचित्यपूर्ण निर्देश थाय तो आ फरियाद महदंशे शमी जाय.

आ फरियादने कारणे ज, घणां घणां संशोधनो कशाज वांधाविरोध विना स्वीकारवानी क्षमता, तत्परता अने उदारता होवा छतां, परम्परा द्वारा तेनो अकारण ज इन्कार थतो होय छे. आनाथी थतुं नुकसान केवल परम्पराने ज नथी, संशोधनक्षेत्रने पण छे ज.

अस्तु.

- शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवरणचित्र-परिचय

१. **नारी-अश्व पर सवार श्रीकृष्ण :** मध्यकालना चित्रकारो मनोविनोदार्थे विविध चित्र-संयोजनो आलेखता रह्या छे. नारी-कुंजरनुं संयोजना-चित्र खूब जाणीतुं छे. जेम नारी-कुंजर तेम नारी-अश्व. आमां पांच स्त्रीओए पोतानां शरीरने एवी सुभग रीतिथी संयोजित कर्यां छे के ते संयोजन थकी ज चार-पगाळा अश्वनुं सर्जन थई जाय छे. अने ते पंचनारी-अश्वनी पीठ पर श्रीकृष्ण आरूढ थया छे, अने ते अश्व तेमने झडपी गतिए लई जई रह्यो छे. कृष्णना ऊंचा थयेला हाथमां चाबूक होवानुं भासे छे, जे काल्पनिक बाबतने जीवंत वास्तविकता बक्षे छे. सम्भवतः १८मा शतकनुं राजस्थानी शैलीनुं चित्र.

२. चक्राकारे रास लेतो पुरुषः एक ज पुरुष वर्तुलाकारे भमतो होय त्यारे पेदा थता दृष्टिभ्रमने कारणे एक व्यक्ति अनेक रूपवाळी देखाती होय छे. आ दृष्टिभ्रमनुं मनभावन चित्रांकन ते आ चित्र. आ कल्पना प्रायः देलवाडानां शिल्पोमां कोतरेली जोवा मळे छे; ए रीते आ कल्पना ११-१२मा शतक जेटली जूनी गणाय. १८ मा शतकनुं राजस्थानी शैलीनुं लघुचित्र.

आ बन्ने चित्रो अमियापुरस्थित मेरुधामना प्रणेता आ. श्रीइन्द्रसेनसूरिजीना ग्रन्थसंग्रहमांथी फोटोकोपीरूपे मळेल छे, तेनी आभारप्रदर्शन सह नोंध लेवामां आवे छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

खरतर-पूर्णभद्रगणि निम्मिअ आणंदादिदस-उवासगकहाओ	सं. अमृत पटेल	१
चतुर्विंशतिजिनस्तोत्रद्वय	सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ	३५
श्री ज्ञानतिलकप्रणीतम् गवडीपार्श्वनाथादिस्तोत्रत्रयम्	सं. म. विनयसागर	४३
विविधकविकृत त्रण गेय रचनाओ	सं. साध्वी समयप्रज्ञाश्री	५१
पुष्पमालाचिंतवणी	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	५६
अर्धमागधी आगम साहित्य में श्रुतदेवी सरस्वती	प्रो. सागरमल जैन	६०
श्री बालचन्द्राचार्य एवं श्री ऋद्धिसागरोपाध्याय रचित निर्णय प्रभाकर : एक परिचय	म. विनयसागर	७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खरतर-पूर्णभद्रगणि निर्मित
आणंदादिदस उवासगक्कहाओ

सं. अमृत पटेल

प्रतिपरिचय:

प्रस्तुत 'आणंदादि दस उवासगकहाओ' नी एक मात्र ताडपत्रीय प्रतनी फोटोकोपी मने परमपूज्य प्रवर्त्तक मुनिश्रीजम्बूविजयजी महाराजे श्रुतप्रसादीरूपे मोकलेल, ते उपरथी सम्पादनकार्य सम्पन्न थयुं छे. जेसलमेरनां ज्ञानभण्डारनी, वि.सं. १३०९ मां लखायेल[1] आ ताडपत्र प्रतना दरेक पत्रमां ३-४ पंक्तिओ छे. तेमां केटलीक पंक्ति अखण्डित छे, तेमां लगभग ६१ अक्षरो छे; तो केटलीक पंक्तिओ खण्डित छे, तेमां ६-८ अक्षरो छे. अक्षरो खूब झीणा छतां सुवाच्य छे. छतां क्यांक क्यांक पाठवांचनमां क्षति - मारा अल्प अभ्यासवश- रहेवा पामेल हशे, तो विद्वान् पुरुषो मने क्षम्य गणे.

कृतिः - 'वादिवृन्दप्रभु' खरतरगच्छीय[2] जिनपतिसूरिना शिष्य पूर्णभद्र[3] गणिअे दशम अंगसूत्र 'उवासगदसा'ना साररूपे, आर्यावृत्तमां निबद्ध करेल छे.

१ली गाथामां मंगलाचरण रूपे वीरजिनने नमस्कार करेल छे. ते वीर जिनना चरणने पांजरानुं रूपक अपायुं छे, के जेमां त्रण जगत रूप सालही [देशी नाम ३.४८] सारिकानी जेम निर्भय छे.

२जी गाथामां 'आनन्दादि दस उवासगोनी कहाओ' कहेवानी प्रतिज्ञारूपे अभिधेयनो उल्लेख छे. ३जी गाथाथी १६मी गाथा - वर्ण्य विषयनी यादी = संग्रहणी गाथाओ छे. तेमां दश श्रावकोनां (१) नामो, (२) तेमनी नगरीओनां नामो (३) पत्नीओनां नामो, (४) धर्मप्राप्ति ज्यां थई ते उद्यानोनां नामो, (५) पौषधमां तेमने थयेला उपसर्गो, (६) कालधर्म, (७) अने स्वर्गमां गया ते विमानोनां नामो. त्यारबाद १. आनन्द श्रावक (गाथा १७-१२६) २. कामदेव श्रावक (गाथा १२७-१३९) ३. चुलनीपिता (गाथा १४०-१५०) ४. सुरादेव (गाथा १५१-१५५) ५. (चुल्ल)लघुशतक (गाथा १५६-१६१) ६. कुण्डकोलिक (गाथा १६३-१८४) ७. सद्दालपुत्त (गाथा १८५-२७२) ८. महाशतक (गाथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७३-३२८) ९. नन्दिनीपिता (गाथा ३२९-३३३) १०. लंतिय (शालही० उवा०) पिता (गाथा ३३४-३३८) आटली बाबतोनो संग्रह थयो छे.

अहीं दरेक श्रावकने 'गाहावई'=गाथापति=धनाढ्य-समृद्ध सद्गृहस्थ कह्या छे, एटले दरेक श्रावक समृद्धिसम्पन्न अने समाजमां लब्धप्रतिष्ठ हता. आमां आनन्द श्रावक, कुण्डकोलिक श्रावक, सद्दाल श्रावक अने महाशतक श्रावकनी कथाओ प्रमाणमां कंईक मोटी छे. कारण के आनन्दकथामां तेमनी समृद्धिनुं तथा तेमना अवधिज्ञान अंगेनुं वर्णन छे. कुण्डकोलिक अने कोईक देवनी वच्चे आजीवकमत विषे थयेली चर्चामां देव निरुत्तर थई जाय छे. सद्दालपुत्र पोते आजीवक मतानुयायी हता, वीरभगवाननी देशनाथी सम्यक्त्व पाम्या. त्यार बाद ते समयनां मूर्धन्य आजीवक गोशालक अने सद्दालपुत्र वच्चे चर्चा थाय छे. तेमां आजीवकमतनुं निरसन कई रीते थाय छे तेनुं वर्णन छे. महाशतक श्रावककथामां धर्ममार्गे पौषधव्रतनी आराधना करतां महाशतक ने तेनी ज एक भोग-विलासमग्न पत्नी 'रेवती'अे अनुकूळ उपसर्गो कर्या हता तेमां निश्चल रहेता महाशतक श्रावकने अवधिज्ञान थाय छे, एनुं वर्णन छे.

ग्रन्थकारे ३३९मां प्राकृतभाषामां स्रग्धरावृत्तबद्ध एक ज पद्यमां ग्रन्थनी प्रशस्ति रची छे. त्यार बाद संस्कृत भाषामां मालिनी वगेरे विविध वृत्तबध्ध १० पद्योमां ग्रन्थलेखन प्रशस्ति छे. तेमां ग्रन्थ लखावनार ऊकेशवंशनां भुवनपाल साधुना पूर्वजोनुं वर्णन छे. अन्तमां 'अथ चूर्णिः ना मथाळा हेठळ प्रस्तुत ग्रन्थमां आवता केटलाक प्राकृत देशी - आर्ष शब्दोनुं संस्कृतभाषामां अर्थ विवरण कर्युं छे. तेमां 'उवासगदसा' नामक आगम ग्रन्थ उपरनी नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरिनी वृत्तिनो पण उपयोग करवामां आव्यो छे.

१. प्रस्तुत ताडपत्रीय प्रत वि.सं. १३०९मां, मेदपाट-मेवाडमां बरग्राममां अभयी श्रावक तथा समुद्धरण श्राविकानी सावि नामनी कुलपुत्रीअे 'धन्य-शालिभद्र-कृतपुण्य महर्षिचरितादि पुस्तिका' पोताना श्रेयार्थे लखी छे. पुस्तकनी आ प्रशस्तिनां ९मा पद्यमां पुस्तिका लखावनार भुवनपाल साधुनो उल्लेख छे. तेना पूर्वजोनो विस्तृत परिचय छे. परन्तु लेखन संवत् नथी.

२. जिनपतिसूरिजीए नेमिचन्द्र भंडारीने बोध पमाड्यो हतो. पछी भंडारीअे षष्ठीशतक ग्रन्थनी रचना करी हती. आ जिनपतिसूरिने पूर्णभद्रगणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वादिविंदप्पहु' कहे छे. ते उचित लागे छे. कारण के जिनपतिसूरिअे 'विधिप्रबोधवादस्थल' नामनो ग्रन्थ रच्यो छे. तेमां (वादिदेवसूरिशिष्य > महेन्द्रसूरि >) प्रद्युम्नसूरिअे 'वादस्थल' नामना पोताना ग्रन्थमां करेल 'आशापल्लीना उदयविहारमां प्रतिष्ठित प्रतिमा पूजनीय नथी', आवा विधाननुं खण्डन कर्युं छे.

सं. १२३३ मां कल्याणनगरमां महावीर भगवाननी प्रतिमानी प्रतिष्ठा करी हती (जिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प), तीर्थमाला, जिनवल्लभसूरिकृत 'संघपट्टक' उपर टीका (प्रायः सं. १२९९), जिनेश्वरसूरिकृत पंचलिंगी प्रकरण उपर विवरण वगेरे अेमनी रचनाओ छे. (मोहनलाल द. देसाई-जै. सं. साहित्यनो संक्षिप्त इति. पृ. ४९२, सं. मुनिचन्द्रसूरिजी)

३. जिनरत्नकोश. विभाग १, पृ. २२४, तथा पंचतन्त्र उपाख्यान (जे पूर्णभद्रनी सं. १२५५ नी रचना)ना उपोद्घात, मां डो. सांडेसरा तथा मो.द. देसाई वगेरे 'जिनपतिसूरिशिष्य पूर्णभद्रगणिनो कवन समय १२५५ थी १३०५ गणावे छे. परन्तु 'युगप्रधानाचार्यगुर्वावली' प्रमाणे खर. पूर्णभद्रगणिनी दीक्षा वि. १२६०मां थयेल छे. अेटले अगरचंद नाहटा पंचाख्याननना कर्ता अने 'आनंदादिदसकहाओ'ना कर्ता - पूर्णभद्र जुदा हशे अेम माने छे. (ही.र. कापडिया, जैन सं. साहित्यनो इति. सं. मुनिचन्द्रसूरिजी - खंड १, पृ. १३९)

४. पूर्णभद्रगणिनी बीजी कृतिओ आ मुजब छे :

१. स्थानांग सूत्र, भगवती सूत्रमांथी उद्धृत करीने 'अतिमुक्तक चरित्र' (र.सं. १२८२. पालनपुर).

२. छ परिच्छेदमां विभक्त 'धन्यशालिभद्र चरित्र' (र.सं. १२८४, जेसलमेर)

३. कृतपुण्यचरित्र (र.सं. १३०५)
आमां सर्वदेवसूरिजीअे सहाय करी हती अने सूरप्रभवाचके कृतिओनुं संशोधन कर्युं हतुं.

४. 'पंचतन्त्र' आ प्रसिद्ध नीतिकथाग्रन्थ उपरथी 'पंचाख्यान ग्रन्थ' (र.सं. १२५५ खंभात)

५. आनन्द वगेरे दश श्रावकोनां जीवन उपर [प्रायः उवासगदसाओना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुकरण रूपे] प्राकृतमां बीजी एक रचना साधुविजयशिष्य शुभवर्धन गणीओ 'दशश्रावकचरित्र'नामे करी छे. तेनुं सम्पादन आ. मुनिचन्द्रसूरिजीओ कर्युं छे अने विजयभद्रसूरिचेरिटी ट्रस्टे तेनुं प्रकाशन कर्युं छे.

६. ग्रन्थ लेखननी प्रशस्ति संस्कृत भाषामां छे. तेमां मालिनी, वसन्ततिलका स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, पृथ्वी जेवा प्रसिद्ध छन्दोनो प्रयोग थयो छे. तेमां ८ मुं पद्य 'भामा' नामना अर्धसम (त-भ-स-य + ज-भ-स-य) छन्दमां निबद्ध छे- आ छन्दनुं नाम अने लक्षण अेक मात्र कानडी दिगम्बर जयकीर्ति कृत 'छन्दोनुशासन (ले.सं. १०५०)मां छे.

—x—

[पीठिका]

जस्स पयनहपहाभरपंजरमज्झट्ठिया तिलोई वि ।
पडिहासइ मि(नि)च्चलसालहि व्व, तं नमिय जिणवीरं ॥१॥
आणंदाइदसण्हं उवासगाणं कहाओ वुच्छमि ।
दट्ठूण सत्तमंऽगं समासओ आयसरणत्थं ॥२॥
तत्थ संगहणिगाहाओ-
आणंदे कामदेवे य, गाहावइचुलणीपिया ।
सुरदेवे चुल्लसयगे, गाहावइकुंडकोलिय(ये) ॥३॥
सद्डालपुत्ते कुंभारे, महासयए अट्ठमए ।
नंदिणीपिया नवमे, दसमे सालिहीपिया ॥४॥ [इति श्रावकाः]
सिवनंद भद्दा सामा, घण बहुला पुस्स अग्गिमित्ता[य] ।
रेवइ(ई) अस्सिणी तह, फग्गुणी भज्जाण नामाइं ॥५॥ [इति श्रावकभार्याः]
वणियग्गाम चंपा दुवे य, वाणारसीए नयरीए ।
आलभिया य पुरवरी, कंपिल्लपुरं च बोधव्वं ॥६॥
पोलासं रायगिहं, सावत्थीए पुरीए दुन्नि भवे ।
एए उवासगाणं नयरा खलु होंति बोधव्वा ॥७॥ [श्रावकाणां नगर्यः]
दूइपलासं तह पुन्नभद्दं दो कोट्ठए सरवणं ।
दोन्नि य सहसंबवण गुणसिलयं कोट्ठए दुबि ॥१८॥
[इति श्रावकाणां व्रतावाप्त्यारामनामानि]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि छच्च अट्ठ य, छऽट्ठ छच्चेग अट्ठ चत्तारि ।
चत्तारि य कोडीओ, निहि-वुड्ढि-पवित्थरेसु कमा ॥९॥
चत्तारि छच्च अट्ठ य, छऽट्ठ छच्चेग अट्ठ चत्तारि ।
चत्तारि वया दस - गोसहस्समाणेण विन्नेया ॥१०॥

[इति श्रावकाणां समृद्धिः गोव्रजसङ्ख्या च]

सिरिवीरजिणसगासे, सावयधम्मो दुवालसविहो वि ।
पडिवन्नो सव्वेहिं वि, तत्तो वरिसम्मि पन्नरसमे ॥११॥
जिट्ठसुए ठविऊणं, गिहभारं सावयाण पडिमाओ ।
एकारस पडिवन्नाओ वीसं वासाइं परियाओ ॥१२॥

[इति श्रावकाणां धर्मप्राप्तिः प्रतिमाश्च]

ओहिन्नाण पिसाए, माया वाहिंधण उत्तरिज्जे य ।
भज्जा य सुव्वया, दुव्वया निरुवसग्गा दोन्नि ॥१३॥

[इति श्रावकाणां वैशिष्ट्यम्]

अंते कयाणसणा मासियसंलेहणा य सोहम्मे ।
उप्पन्ना सुहभावा एएसुं वरविमाणेसुं ॥१४॥
अरुणे अरुणाभे खलु, अरुणप्पह अरुणकंतऽरुणसिट्ठे ।
अरुणज्झए य छट्ठे, अरुणभूते य सत्तमए भणिए ॥१५॥
अरुणवडिं से अरुणग्गे य, दसमे तह अरुणकीलए ।
चउपलियाऽऽऊ चविउं सिज्झिस्संती विदेहेसु ॥१६॥

[इति पर्यन्ताराधना, सुरविमानानि च] इति **पीठिका** ॥

[१] [आनन्दश्रावककथानकम्-]

तत्थ य पढमं समणोवासग-**आणंद**नामधेयस्स ।
भव्वाण कयाणंदं चरियं परिकित्तइस्सामि ॥१७॥
अत्थि इह **भरहवासे**, **वाणिय**गामाभिहाण वरनयरं ।
तं पालइ हयसत्तू, राया नामेण **जियसत्तू** ॥१८॥
तत्थ सुहि-सयण जणमणकुमुयवणवियासणे अमियकिरणो ।
आणंदनामधेयो निवसइ गाहावइप्पवरो ॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दक्खिन्न-सील-सालीणयाइगुणरयणरोहणधरित्ती ।
नियपियजणियाणंदा **सिवनंदा** भारिया तस्स ॥२०॥
चउरो हिरन्न कोडी निहिम्मि चउरो य वित्थरे तस्स ।
चउरो कलंतरम्मी सव्वग्गं बारस हवंति ॥२१॥
चत्तारि य तस्स वया गोरूवाणं च अइबलिट्ठाणं ।
एक्केक्क चउदस गो-सहस्समाणो मुणेयव्वो ॥२२॥
तत्थ य रिद्धि-समिद्धा सयणा संबंधि-परियणा सुहिणो ।
वाणियगामस्स बहिं, वट्टइ पुव्वुत्ते दिसी(सि)भागे ॥२३॥
कोल्लागसंनिवेसो, पत्तेय(तत्थ य) धणधन्नरमणीओ बहवो ।
निवसंति सुहसुहेणं आणंद गिहिवइणो (?) ॥२४॥

[-वीरजिनागमनम्-]

अह अन्नया कयाई वाणियगामाभिहाणनयरस्स ।
ईसाणदिसीभागे दूइपलासम्मि उज्जाणे ॥२५॥
सुललियगइप्पयारो सुसाहु-गयकलह-निवहपरिकलिओ ।
वीरजिणो संपत्तो विहरंतो गंधहत्थि व्व ॥२६॥
जोयणपमाणखित्ता विहुणिय तण-कट्ठ-कयवराईयं ।
वाउकुमारेहिं बहिं खित्तं वायं विउव्वित्ता ॥२७॥
गंधोदगं च वुट्ठं मेहकुमारामरेहिं सुसुयंधं ।
भूरेणुपसमणट्ठा पविरलधारानिवाएण ॥२८॥
रिउदेवयाहिं विहिया वियसियकुसुमाण पंचवन्नाणं ।
हिट्ठट्ठियविंदाणं वुट्ठी आजाणु सुरहीणं ॥२९॥
मणि-कणय-रययविरइय-पायारतियाभिराममोसरणं ।
विहियं विमाणि-जोइस-भवणाहिवईहिं देवेहिं ॥३०॥
मज्झे य बहलपल्लव-सोहिल्लो वंतरेहिं कंकिल्ली ।
बत्तीहधणुहमाणो निम्मविओ पवरकप्पतरू ॥३१॥
सरयससिसिसियं सोहइ छत्तत्तयमुन्नयं तियसविहियं ।
सुरसत्तीए एगत्थ पिंडियं जयपहुजसो व्व ॥३२॥
वरकंचणमणिमइयं विसालसीहासणं विणम्मवियं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवच्छन्दो वि कओ रयणमओ वंतरसुरेहिं ॥३३॥
देवेहिं दुंदुहीओ पहयाओ नहयलं रसंतीओ ।
हक्कारंति व्व जणं ओसरणे धम्मसवणत्थं ॥३४॥
अह पुव्वदुवारेणं पविसिय काउं पयाहिणं **वीरो** ।
सीहासणे निविट्ठो 'तित्थस्स नमो' त्ति भणिऊणं ॥३५॥
पुव्वाभिमुहो; तत्तो तिदिसं पडिरूवगा सुरेहिं कया ।
ते वि हु जिणप्पभावा पच्चक्खं जिण व्व दीसंति ॥३६॥
अह जियसत्तुनरिंदं गंतुं उज्जाणवालओ तुरियं ।
वद्धावइ हिट्ठमणो जिणआगमणप्पवित्तीए ॥३७॥
दाऊण पा[रि]ओसिय-दाणं उज्जाणवालयस्स तओ ।
चउरंगबलसमेओ नायरलोएण परियरिओ ॥३८॥
जयकुंजरमारूढो सियछत्तेणं धरिज्जमाणेणं ।
वीइज्जंतो सियचामरा(रे)हिं जियसत्तुनरनाहो ॥३९॥
तित्थयरवंदणत्थं चलिओ भत्तीए महाविभूईए ।
रुइरालंकारधरो पच्चक्खं कप्परुक्खु व्व ॥४०॥
णाऊण जिणागमणं **आणंदो** गहवई य साणंदो ।
ण्हाओ कयबलिकम्मो कयकोउयमंगलसमूहो ॥४१॥
अप्प-महग्घाभरणेहिं भूसिओ पवरपरिहियदुकूलो ।
नियसयणपुरिसवंदेण परिगओ पायचारेणं ॥४२॥
संतुट्ठरायवियरिय-वरछत्तेणं धरिज्जमाणेणं ।
वियसियकोरंटपलंबमाणमालाभिरामेणं ॥४३॥
नियगेहा निग्गंतुं चलिओ जियसत्तुराइणा सद्धिं ।
भयवंतवंदणत्थं भत्तिभरापूरियसरीरो ॥४४॥
पुव्वदुवारेण मुणी विमाणदेवीओ तह य समणीओ ।
पविसिय पयक्खिणेणं अग्गेयदिसाए निवसंति ॥४५॥
भवणवइ-वाणमंतर-जोइसियाणं विसंति देवीओ ।
दाहिणदारेण पयक्खिणाए निवसंति नेरईए ॥४६॥
जोइसिय-भवण-वणयरा देवा पविसंति पच्छिमदुवारा ।
वीरं पयक्खिणित्ता वंदिय निवसंति ईसाणाए (वायवीए) ॥४७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राया नायरलोओ आणंदो गिहवई वि ओसरणे ।
पविसित्तुत्तरदारे काऊण पयाहिणं पहुणो ॥४८॥
पणि(ण)मित्तु चलणजुयलं उवविट्ठो पुव्वउत्तरदिसाए ।
तो धम्मकहं एवं वीरजिणो कहिउमाढत्तो ॥४९॥
भो भो भव्वा सव्वे वि, पाणिणो सुक्खकंखिणो लोए ।
सुक्खं पुण धम्माओ पाविज्जइ, सो य इह दुविहो ॥५०॥
पढमो मुणीण धम्मो बीओ सुस्सावयाण विन्नेओ ।
पंचमहव्वयरूवो, पढमो सम्मत्तसहियस्स ॥५१॥
जीववह-मुसा-ऽदत्ता-मेहुन्न-परिग्गहेसु जाजीवं ।
तिविहतिविहेण विरई अक्खेवेणेस सिवजणओ ॥५२॥
पंचाणुव्वय-तिगुणव्वयाइं सिक्खावयाइं चत्तारि ।
सम्मत्तेण जुयाइं सावयधम्मो इमो बीओ ॥५३॥
एसो वि कमेणं चिय सिवपुरपहपवरसंदणसरिच्छो ।
जं भवगहणं नित्थारिऊण पावेइ सिवनयरं ॥५४॥
जे पुण पमायवसओ एयं दुविहं पि नो पवज्जंति ।
ते बद्धनिबिडकम्मा भमंति संसारकांतारे ॥५५॥
तम्हा जो सिग्घं चिय मुत्तिसुहं वंछए निराबाहं ।
सो साहुधम्मपडिवज्जणेण सहलं कुणउ जम्मं ॥५६॥
जो पुण तं असमत्थो काउं, सो सावयाणमिह धम्मं ।
सम्मत्तमूलमइयार-वज्जियं सम्ममायरउ ॥५७॥
अक्खेवमोक्खसोक्खा-भिलासिणो जे महासत्ता ।
ते तिहुयणपहुवयणं, सोऊण वयं पवज्जंति ॥५८॥
असमत्था जे काउं पव्वज्जं, ते वि सावयवयाइं ।
सम्मत्तसंजुयाइं पडिवन्ना वीरपासम्मि ॥५९॥
जियसत्तुनरवरिंदो वंदिय पयपंकयं जिणिंदस्स ।
नियनयरमणुपविट्ठो नायरलोएण सह तुट्ठो ॥६०॥
आणंदो वि हु सवणंऽजलीहिं जिणणाहवयणकमलाओ ।
वयणामय-मयरंदं पाउं भमरो व्व संतुट्ठो ॥६१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब्भुट्ठिऊण जिणनाहसविहमागम्म नमिय पयकमलं ।
विणएण पंजलिउडो विन्नविउमेवमाढत्तो ॥६२॥
भयवं ! जह तुह पासे राईसरमाइया बहू लोया ।
तणमिव पडग्गलग्गं नियगेहं सिरिं परिच(च्च)च्चा ॥६३॥
पडिवन्ना पव्वज्जं, न समत्थो हं तहा तिजगनाह ! ।
ता पसिऊणं सावय-वयाइमारोवे(व)सु ममं पि ॥६४॥
तो भणइ जिणवरिंदो आणंदं अमियमहुरवाणीए ।
देवाणुपिया ! तुमए, नो पडिबंधो विहेयव्वो ॥६५॥
तो आणंदो पढमे जावज्जीवाए दुविहतिविहेण ।
थूलगपाणाइवायं पच्चक्खइ जिणवरसमीवे ॥६६॥
थूलं च मुसावायं पच्चक्खइ दुविह-तिविहं जाजीवं ।
एवमदत्तं थूलं दुविहं तिविहेण जाजीवं ॥६७॥
सिवनंदं मोत्तूणं उराल-वेउव्वियाओ इत्थीओ ।
जावज्जीवं वज्जे दुविहं तिविहेण सुद्धमणो ॥६८॥
परिगहपरिमाणम्मि निहिम्मि वुड्ढीए वित्थरेसुं च ।
पत्तेयं पत्तेयं कोडिचउक्कं हिरण्णस्स ॥६९॥
दस गो-साहस्सिय-वयचउक्कपरओ चउप्पयं नियमे ।
खित्तम्मि पंचहलसय चत्तूण य सेस नियमे(?) ॥७०॥
दिसिजत्तियाण सगडाण तह संवाहणियाण पंचसया ।
परओ सगडविहिम्मि पच्चक्खाणं अहं काहं ॥७१॥
दिसिजत्तियाण पोयाण तह संवहणियाण चउण्हं ।
परओ पोयविहिं पि हु पच्चक्खे जावजीवमहं ॥७२॥
मुत्तूण गंधकासाइयं वत्थाइं मज्जणनिमित्तं ।
सेसं उवभोगवए वज्जे अंगाइं(इ-) लूहणयं ॥७३॥
अल्लमहुलट्ठिदंत-वणयं च मह एगमेव मुक्कलयं ।
खीरामलयं एगं फलविहिमज्झम्मि जाजीवं ॥७४॥
तिल्लं सयपाग-सहस्सपागमब्भंगणे महं होउ ।
गंधट्टयं च एगं सुरहिं उव्वट्टणविहीए ॥७५॥
अट्ठहिं उट्टिअघडएहिं मज्जण सेसयं तु पच्चक्खे ।
वत्थम्मि खोमजुयलं मुत्तुं सेसं परिहरामि ॥७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कप्पूरागरुचंदण-कुंकुमपभिइं विलेवणं होउ ।
एगं च सुद्धपउमं मालइमालाइ पुप्फाइं ॥७७॥
मट्ठं कन्निज्जजुअं नाममुद्दं च होउ आहरणं ।
धूयणविहिमवि वज्जे अगुरु-तुरुक्काइं(इयं) मोत्तुं ॥७८॥
भोयणविहीए पेज्जा-विहिम्मि मह कट्ठपिज्जणया ।
भक्खणविहीए घयउर तह खंडयरखज्जया चेव ॥७९॥
कलसूय कलमसाली सेसं सूओयणं परिहरामि ।
घयमवि सारग्गं गो-घयवज्जं वज्जेमि सयकालं ॥८०॥
चुच्चुय-सुत्थिय-मंडुक्कसागसेसं चएमि सागविहिं ।
पालक्का माहुरयं सेसं वज्जेमि माहुरयं ॥८१॥
आगासोदगवज्जं उदगं सेसं सया वि पच्चक्खे ।
तंबोलं पंचसुगंधियं च सेवे न उण सेसं ॥८२॥
कम्मयओ बीयगुणव्वयम्मि खरकम्म-कम्मदाणाई ।
पनरस वज्जेमि अहं पुव्वुत्तपरिग्गहे जयणा ॥८३॥
चउहा अणत्थदंडं वज्जे तत्थाइमं अवज्झयणं ।
पमायायरियं हिंसप्पयाण पावोवएसं च ॥८४॥
तह सामाइयं देसा-वगासियं पोसहोववासं च ।
अतिहीणं संविभागं पडिवज्जइ सुत्तविहिणा उ ॥८५॥
एवमणुव्वय-गुणवय-सिक्खावयसंजुयम्मि गिहिधम्मे ।
पडिवन्ने भणइ जिणो, आणंदा ! एत्थ अइयारा ॥८६॥
सम्मत्ताईएसुं सव्वेसु वि पंच पंच हुंति कमा ।
जाणिय परिहरिअव्वा गिहिणा सुत्ताणुसारेण ॥८७॥
अह संलेहणजोग्गं तस्स सरूवं वियाणिय भविस्सं ।
संलेहणं पि साहइ अइयारसमत्तियं **वीरो** ॥८८॥
तो **आणंदो** सम्मत्तमूलमिय गिण्हिऊण गिहिधम्मं ।
नाणाभिग्गहजुत्तं संतुट्ठो जाइ नियगेहं ॥८९॥
कहिऊण धम्मपडिवत्ति-वइयरं भारियं सिवाणंदं ।
वीरजिणवंदणत्थं पेसइ गिहिधम्मपेस(पसि)णट्ठा ॥९०॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सा वि हु रहमारोहिउं संतुट्ठा भत्तुणा समाइट्ठा ।
विहिणा वंदिय वीरं पडिवज्जइ सावयवयाइं ॥९१॥
अहिगयजीवाऽजीवो आणंदो सावओ सभज्जो वि ।
मुणिजणदाणपसत्तो चउदसवरिसे अइक्कमइ ॥९२॥
अह पनरसम्मि वरिसे सो चिंतइ रयणिचरिमजामम्मि ।
गिहि-सयण-सुहियकज्जेसु वावडो वीरजिणधम्मं ॥९३॥
नो सम्मं पालेत्तु(त्तुं) सत्तो ता गिहभरम्मि जिट्ठसुयं ।
संठविउं गंतूणं कोल्लागे सन्निवेसम्मि ॥९४॥
पोसहसालं पडिलेहिऊण तह थंडिलाइं विहिपुव्वं ।
अकयाकारियभोई गिहिपडिमाओ पवज्जिस्सं ॥९५॥
इय सिंचिंतिय बीए दिणम्मि समाविऊण सुहि-सयणे ।
जिट्ठसुए गिहि(ह)भारं संठवइ ताण पच्चक्खं ॥९६॥
कोल्लागसंनिवेसे सिरिवीरजिणंदधम्मपन्नत्तिं ।
पडिवज्जित्ता विहरइ पायं पडिवज्जियारंभो ॥९७॥
एक्कारसपडिमाओ उवासगाणं विहीए फासिंतो ।
तवसोसियसव्वंगो जाओ चम्मट्ठिसेसतणू ॥९८॥
अह अन्नया विचिंतइ रयणिविराममि, अत्थि मज्झ बलं ।
देहे परकूलमजजाओ (?) उट्ठाणवीरियं वा वि ॥९९॥
ताव अपच्छिमसंलेहणाए संलिहियसयलदेहस्स ।
पडिवन्नाऽणसणस्स य, सेयं विहरित्तए मज्झ ॥१००॥
पडिवन्नाऽणसणस्स य विसुज्झमाणासु भाव-लेसासु ।
उप्पन्नमोहिनाणं ति पिच्छई खित्तमेवं सो ॥१०१॥
पुव्वेण दाहिणेणं अवरेणं लवणसायरस्संऽतो ।
पंचेव जोयणसये पिच्छइ हिमवंतमुत्तरओ ॥१०२॥
उड्ढं जा सोहम्मं अहे य रयणप्पभाए पुढवीए ।
लोलुय-अच्चुयनरयं चउरासि वाससहस्सठिइं ॥१०३॥
अह वाणियगामबहिं दूइपलासम्मि चेइए रम्मे ।
बहुदेसे विहरित्ता वीरजिणिंदो समोसरिओ ॥१०४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिसाए पडिगयाए गोयमसामी वि छट्ठपारणए ।
सामिं वंदिय पविसइ वाणियगाममम्मि भिक्खट्ठा ॥१०५॥
पंचसमिओ तिगुत्तो हिंडंतो गहियभत्तपाणो य ।
कोल्लागसंनिवेसम्मी गच्छंतो सुणइ जणवायं ॥१०६॥
'अत्थि इहं आणंदो अंतेवासी जिणस्स वीरस्स ।
संलेहणाइपुव्वं पडिवन्नो अणसणं विहिणा' ॥१०७॥
तत्तो गोयमसामी गच्छइ कोल्लागसंनिवेसम्मि ।
जत्थऽच्छइ आणंदो पोसहसालाए नियमत्थो ॥१०८॥
इंतं गोयमसामिं आणंदो पासिऊण साणंदो ।
भणइ 'न सत्तो भंते ! तुम्ह समीवं हमागंतुं ॥१०९॥
ता इच्छाकारेणं आगच्छह इत्थ मह समीवम्मि ।
जेणाहं तुह पाए सिरसा वंदामि तिक्खुत्तो ॥११०॥
तो वंदित्ता पुच्छइ आणंदो गोयमं जहा भंते ! ।
गिहिणो गिहट्ठियस्स वि उप्पज्जइ ओहिनाणं किं ? ॥१११॥
ता गोयमेण भणियं, 'उप्पज्जइ', सो भणइ जइ एवं तो ।
ममावि तमुप्पन्नं इइ भणिउं कहई पुव्व(व्वु)त्तं ॥११२॥
अह भणइ गणाहिवई, आणंदा ! न त्थि एत्तिओ विसओ ।
गिहिणो ओहिन्नाणे, ता आलोयाहि एत्थ तुमं ॥११३॥
निंदण-गरहणपुव्वं पायच्छित्तं संपवज्जाहि ।
तो भणइ आणंदो 'किं भंते ! जिणवरमयम्मि ॥११४॥
संताण वि अत्थाणं सब्भूयाणं च होइ पच्छित्तं ?' ।
'न हु न हु सब्भूयत्थे, पच्छित्तं' गोयमो भणइ ॥२१५॥
जइ एवं तो भंते ! गिण्हह तुब्भे वि इत्थ पच्छित्तं ।
जम्हा पेच्छामि अहं ओहिन्नाणेण इइ खित्तं ॥११६॥
तत्तो गोयमसामी संकाइ समन्निओ दुयं जाइ ।
सिरिवीरजिणं नमिउं आलोइय भत्तपाणं च ॥११७॥
आणंदसावयस्स य कहिऊणं ओहिनाणवुत्तंतं ।
पुच्छइ 'पायच्छित्ती किं आणंदो उयाहु अहं ? ॥११८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह भणइ वड्ढमाणो गोयम ! सच्चं कहेइ आणंदो ।
ता कह पायच्छित्तं अरिहइ सो निरवराहो वि ॥११९॥
तं पुण विचित्तछउमत्थनाणआवरणजोगओ इत्थं ।
जाओ पच्छित्तऽरुहो, आलोएसु ता तुमं सम्मं ॥१२०॥
तह खामसु गंतूणं **आणंदं** सावयं सयं[तं] तु ।
ता विणएण पडिच्छिय **गोयम**सामी कुणइ सव्वं ॥१२१॥
आणंदो निव्विग्घं सीलव्वयं गुणव्वयाइं पालेउं ।
फासित्ता पडिमाओ उवासगाणं समग्गा वि ॥१२२॥
मासं च कयाणसणो पज्जंते सुद्धचित्तपरिणामो ।
वीसवरिसाइं सावयपरियायं पूरिउं सयलं ॥१२३॥
सोहम्मदेवलोए **सोहम्मवडिंसग**स्स ईसाणो ।
अरुणविमाणाहिवई चउपलियाओ(ऊ) सुरो जाओ ॥१२४॥
तत्तो चुओ स जम्मं **महाविदे**हम्मि उत्तमकुलम्मि ।
पाविय, भोगसमिद्धिं पढमवए चेव चइऊण ॥१२५॥
पव्वज्जं निरवज्जं सम्मं परिवालिऊण कम्मखए ।
उप्पाडिऊण केवलनाणं सिज्झिस्सइ महप्पा ॥१२६॥

आणंदश्रावककथानकं समाप्तम् । छ ।
शुभं भवतु लेखक - पाठकयोः ॥छा॥

२ - [सिरिकामदेवसावगकहाणयं]-

अंगा जणवय, **चंपा, जियसत्तू कामदेवो** कोडुंबी ।
भद्दा भज्जा तह पुत्तभद्दनामं च उज्जाणं ॥१२७॥
छक्कोडीओ निहाणे वुड्ढीए छच्च, छच्च वित्थारे ।
छच्चेव वया दसगो-सहस्समाणेण उ वएण ॥१२८॥
वीरजिणसमोसरणं तस्स समीवम्मि धम्मपडिवत्ती ।
पन्नरसम्मि य वरिसे गिहभारं जिट्ठपुत्तम्मि ॥१२९॥
निक्खविऊणं पोसह-सालाए **वीर**धम्मपन्नत्तिं ।
पडिमापडिवन्नस्स य पच्छिमपहरम्मि राईए ॥१३०॥
मिच्छद्दिट्ठिसुरेणं पिसाय-करि-भुयंग-भूयकरणेहिं ।
अच्चंतभीसणेहिं कमसो उवसग्गकरणेणं ॥१३१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चक्खुभिए साहा-वियरूवधरो गयणसंठिओ देवो ।
सक्कपसंसं कहिउं खामेउं पडिगओ तत्तो ॥१३२॥
तम्मि समए **वीरो** समोसढो **पुन्नभद्द**उज्जाणे ।
गच्छइ य **कामदेवो** स-पोसहो जिणवरं नमिउं ॥१३३॥
धम्मकहाए अणंतर कहिउं **वीरेण** राइवुत्तंतं ।
ससुरासुरनरपरिसाए पसंसिओ **कामदेव**गिही ॥१३४॥
आमंतेउं **गोयम**-पभिइं समणे उ तह य समणीओ ।
भणिया 'जिणसमये, जइ गिही वि एवं अवलंबित्ता (अचलवित्ता)॥१३५॥
तो साहु-साहुणीहिं गणिपिडगिक्कारसंऽगधारीहिं ।
होयव्वमचलेहिं विसेसं तु (विसेसतो) मोक्खकंखीहिं ॥१३६॥
तो नमिय **कामदेवो** पुच्छिय पसिणाइं अट्ठमायाय ।
पमुदियचित्तो पारिय पोसहं नियगिहं पत्तो ॥१३७॥
सावयपरियायं सो परिवालिऊण वीसवासाइं ।
काऊणं मासमेगं पज्जंते अणसणं विहिणा ॥१३८॥
सोहम्मे चउपलियो **अरुणा**भविमाणअहिवई देवो ।
महाविदेहे सिज्झिस्सइ खीणकम्ममलो ॥१३९॥

इति कामदेवकथानकं । छ । २ । मङ्गलं महाश्रीः ॥छ॥

३ - [सिरिचुलणीपियासावगकहाणयं]-

कासीविसए वाणा-रसीए **जिय**सत्तु कुट्ठमुज्जाणं ।
चुलणीपिया गिहवई **भद्दा** माया, पिया **सामा** ॥१४०॥
कोडीओ हिरन्नस्स उ अट्ठ निहि-वुड्ढि-वित्थरेसु कमा ।
अट्ठ वया, जिणपासे सावयधम्मस्स पडिवत्ती ॥१४१॥
पोसहिय बंभयारी देवागमणं च पुत्ततियगस्स ।
तिन्नेव मंससोल्ले काउं रुहिरेण सिंचेइ ॥१४२॥
अक्खुभियं तं नाउं भणइ सुरो मायरं इमं **भद्दं** ।
देव-गुरूण समाणिं तुह दुक्खकारयं हणिउं ॥१४३॥
तिन्नेव मंससोल्ले काउं रुहिरेण हं तुमं सिंचे ।
अट्टवसट्टो होऊण तुमं अकाले विवज्जिहिसि ॥१४४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं सोऊण सो खुहिओ, धावइ तं पइ, सुरो गओ गयणे ।
खंभं आसाइत्ता कुणइ य कोलाहलं गरुयं ॥१४५॥
तो **भद्दा** से माया समागया भणइ 'पुत्त ! किं एयं ? ।
सो भणइ सुरसरूवं तत्तो मायाएँ सो भणिओ ॥१४६॥
उवसग्गो पुत्त ! इमो विहिओ केणवि ता तुमं इण्हि ।
आलोयण-निंदण-गरहणाहिं सोहेसु वयभंगं ॥१४७॥
चुलणीपिया वि पडिवज्जिऊण जणणीए चोयणं सम्मं ।
आलोयण-निंदण-गरहणाहिं सोहेइ वयभंगं ॥१४८॥
सावयपरियायं सो परिवालेऊण वीस वासाइं ।
काऊण मासमेगं पज्जंते अणसणं विहिणा ॥१४९॥
सोहम्मे चउपलिओ **अरुणप्पह**विमाणअहिवई देवो ।
होउं महाविदेहे सिज्झिस्सइ खीणकम्ममलो ॥१५०॥

इति चुलिनीपिताकथानकं ॥छ। ३॥

४ - [सिरिसुरादेवसावगकहाणयं]-

वाणारसि जियसत्तू कोट्ठं छक्कोडीपहू **सुरादेवो** ।
धन्ना भज्जा, सामी समोसढो धम्मगहणं च ॥१५१॥
पडिमापडिवन्नस्स य देवागमणं च पुत्ततियगस्स ।
पंचेव मंससोल्ले काउं रुहिरेण सिंचेइ ॥१५२॥
तह वि हु तं अक्खुभियं नाउं पभणइ सोलसायंके ।
तुह देहम्मि खिविस्सं, खुभियं संबोहइ **धन्ना** ॥१५३॥
सावयपरियायं सो परिपालिऊण वीस वासाइं ।
काऊण मासमेगं पज्जंते अणसणं विहिणा ॥१५४॥
सोहम्मे चउपलिओऽरुणकंत**विमाणअहिवई देवो ।
होउं **महाविदेहे** सिज्झिस्सइ खीणकम्ममलो ॥१५५॥

इति सुरादेवकथानकं । छ ॥४॥

५ - [सिरिचुल्लसयगसावगकहाणयं] -

आलहिया जियसत्तू संखवणं, **चुल्लसयग** छक्कोडी ।
बहुला भज्जा, सामी समोसढो धम्मगहणं च ॥१५६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिमापडिवन्नस्स य देवागमणं च पुत्ततियगस्स ।
सत्तेव मंससोल्ले काउं रुहिरेण सिंचेइ ॥१५७॥
तं अक्खुभियं नाउं भणइ सुरो त(तु)ह हिरन्नकोडीओ ।
गिण्हेउं छ इमाओ निही वुड्ढी वित्थराओ अहं ॥१५८॥
आलभिया सिंघाडग-चाउक्क-तिय-चच्चरेसुं सव्वत्थ ।
विप्पइरिस्समहं खलु खुभियं संबोहइ भज्जा ॥१५९॥
सावयपरियायं सो परिवालेऊण वीस वासाइं ।
काऊण मासमेगं पज्जंते अणसणं विहिणा ॥१६०॥
सोहम्मे चउपलिओऽ**रुणसिट्ठ**विमाणअहिवई देवो ।
होउं महाविदेहे सिज्झिस्सइ खीणकम्ममलो ॥१६१॥

इति चुल्लशतकश्रावककथा ॥छा। ५।

६ - [**सिरिकुंडकोलियसावयकहाणयं**] -

पंचाला कंपिल्लं जियसत्तू, कुंडकोलिय कुडुंबी ।
पूसा य तस्स भज्जा, **सहसंबवणं** च उज्जाणं ॥१६२॥
कोडीओ हिरन्नस्स य छच्च निही-वुड्ढी-वित्थरेसु कमा ।
छच्च वया जिणपासे सावयधम्मस्स पडिवत्ती ॥१६३॥
अह अन्नया य पच्चा-वरण्हसमए **असोग**वणियाए ।
पुढविसिलाए नामा[म]मुद्दं तह उत्तरिज्जं च ॥१६४॥
ठविउं वीरभयवओ उवसंपज्जित्तु धम्मपन्नत्तिं ।
जा चिट्ठइ ज्झाणपरो ता चेगो एइ एत्थ सुरो ॥१६५॥
पुढविसिलापट्टाओ नाममुद्दोत्तरिज्जए गहिउं ।
आगासे ठिओ सो **कुंडकोलियं** भणिउमाढत्तो ॥१६६॥
पवरा **गोसालस्स** य मंखलिपुत्तस्स धम्मपन्नत्ती ।
जम्हा नो उट्ठाणं कम्मं बलं वीरियं वा वि ॥१६७॥
नो पुरिसक्कार-परक्कम्मस्स जोगो वि वट्टए को वि ।
तह सव्वे वि हु भावा नियमा जं वन्निया एत्थ ॥१६८॥
समणस्स भगवओ पुण **वीर**स्स न चारु धम्मपन्नत्ती ।
जम्हा पुण उट्ठाणाइं संति इहं अनियया भावा ॥१६९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह **कुंडकोडिओ** तं पभणई उट्ठाण-कम्म-विरियाइं ।
जइ नत्थि, तुमे लद्धा, कहं इमा (कहिमा) भो ! दिव्वदेविड्ढी ? ॥१७०॥
अह भणसि अणुट्ठाणाइणा इमा भो ! मए समणुपत्ता ।
ता किं ते न लहंती उट्ठाणाई न जेसऽत्थि ? ॥१७१॥
इय कुंडकोलिएणं भणिओ सो संकिओ नियमणम्मि ।
न खमो वुत्तुं मुत्तुं मुद्दाईयं गओ देवो ॥१७२॥
अह तत्थ बीयदिवसे सहसंबवणम्मि जिणसमोसरणं ।
नाऊण **कुंडकोलिय**-उवासगो हट्ठ-तुट्ठमणो ॥१७३॥
नियपरियणपरियरिओ कंपिल्लपुरस्स मज्झमज्झेणं ।
गंतूण जिणं पणमिय धम्मं निसुणेइ विणयजुओ ॥१७४॥
तयणंतरं जिणेणं भणिओ सो कुंडकोलिओ एवं ।
तुज्झंऽतिए य देवो समागओ कल्लमवरण्हे ॥१७५॥
मिच्छद्दिट्ठी तुमए विहिओ निप्पट्ठ-पसिण-वागरणो ॥
तो धन्नो सि तुमं जो, करेसि एवं कुपहमहणं ॥१७६॥
आमंतेउं गोयमाईसमणा उ तह[य] समणीओ ।
भणइ जिणो जइ गिहिणो, मिच्छद्दिट्ठीण निम्महणं ॥१७७॥
एवं कुणंति, चउदसपुव्वीहिक्कारसंऽगधारीहिं ।
सविसेसं कायव्वं तुब्भेहिं कुतित्थिनिम्महणं ॥१७८॥
पडिवण्णं जिणवयणं 'तह' त्ति समणेहिं तह य समणीहिं ।
तो कुंडकोलिओ नमिअ जिणवरं सगिहमणुपत्तो ॥१७९॥
सीलव्वयाइं सम्मं पालिंतो कुंडकोलिओ सड्ढो ।
साहुजणदाणनिरओ चउदसवरिसे अइक्कमइ ॥१८०॥
पनरसमे पुण वरिसे गिहवावारं निवेसियं सयलं ।
जिट्ठसुयम्मि सयं पुणो(ण) पोसहसालाए सुद्धमणो ॥१८१॥
एक्कारस पडिमाओ कमसो सुत्ताणुसारओ सम्मं ।
पालिंतो विहिणा सो जाओ तवसोसियसरीरो ॥१८२॥
सावयपरियायं सो परिवालेऊण वीस वासाइं ।
काऊण मासमेगं पज्जंते अणसणं विहिणा ॥१८३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोहम्मे चउपलिओ **अरुणगव**विमाणअहिवई देवो ।
होउं महाविदेहे सिज्झिस्सइ खीणकम्ममलो ॥१८४॥
इति कुंडकोलिकश्रावककथानकं समाप्तं । छ । ६ ॥

७ - [सिरिसद्दालपुत्तकहाणयं] -

पोलासं जियसत्तू सहसंबवणाभिहाणमुज्जाणं ।
सद्दालपुत्त आजीवु[वगु]वासगो कुंभगारो य ॥१८५॥
लद्धट्ठो गहियट्ठो पुच्छियट्ठो विणिच्छियट्ठो य ।
आजीवमए अहिगयअट्ठो पिम्माणुरत्तो य ॥१८६॥
एक्का हिरन्नकोडी, निहि-वुड्ढि-पवित्थरेसु पत्तेयं ।
तह एगो तस्स वओ भज्जा पुण अग्गिमित्ता य ॥१८७॥
पंचसयकुंभगारा-वणेसु पुरबाहिरम्मि तस्स सदा ।
दिन्न-भइ-भत्त-वेयण-पुरिसा कम्माइं कुव्वंति ॥१८८॥
घड-पिहड-अद्धघडए वरए करए उट्टियाओ य ।
कलसाऽलिंजर-जंबूलए य निच्चंपि य कुणंति ॥१८९॥
रायपहविवणिमज्झे धरिऊणं विक्किणंति तस्सऽन्ने ।
पुरिसा दिवसे दिवसे, तस्सेवं जंति दियहाइं ॥१९०॥
अह अन्नया कयाई सो अवरण्हे असोगवणियाए ।
गोसालधम्मपन्नत्तिसंजुओ ठाइ एगंते ॥१९१॥
एत्थंतरम्मि एगो देवो आगाससंठिओ मइमं ।
भासुरवरबुंदिधरो पभणइ दिव्वंऽबराऽऽहरणो ॥१९२॥
'सद्दालपुत्त ! आजीवु-वासगा ! भद्द ! एहीइ कल्लं ।
महा-माहण सव्वन्नू अरहा तह केवली य जिणो ॥१९३॥
उप्पन्ननाण-दंसणधारी तियलोक्कवहिय-महियकमो ।
सुर-असुर-निवइ पूइय-सक्कारिय-पणयकय(म)कमलो ॥१९४॥
पच्चुप्पन्नाऽणागय-अईयसमयस्स जाणओ मइमं ।
तह तच्चकम्मसंपयसंजुत्तो खीणमोहो य ॥१९५॥
तं वंदिज्ज नमंसिज्ज सायरं संथुणिज्ज सेविज्जा ।
तह पाडिहारिएहिं सिज्जाईहिं निमंतिज्जा ॥१९६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणिऊण तिन्नि वारं जहागयं पडिगओ य सो देवो ।
आजीविसावगो तं सोऊणं चिंतए हियए ॥१९७॥
'किं मम धम्मायरियो गोसालओ आगमिस्सए कल्लं ।
महमाहणपभईहिं विसेसणेहिं समाउत्तो ?' ॥१९८॥
अह बीयदिणे मोहंऽधयारविद्धंसणो **महावीरो** ।
सहसंबवणे सूरो व्व एइ देवेहिं थुव्वंतो ॥१९९॥
विहियम्मि समोसरणे देवेहिं समागओ नयरलोओ ।
आजीविसावगो वि हु वियाणिऊण जिणागमणं ॥२००॥
ण्हाओ कयबलिकम्मो [कय] कोउयमंगलो सुनेवत्थो ।
सपरीवारो वंदइ **वीरं** तिपयाहिणापुव्वं ॥२०१॥
धम्मकहावसाणे जिणेण सो भणिओ, समायाओ ।
कल्लमवरण्हसमए देवो तुज्झंऽतिए एगो ॥२०२॥
तेणाऽऽगासगएणं वुत्तं 'महमाहणो इहं एही ।
[तं पाडिहारेहिं सिज्जाईहिं निमंतिज्जा]' ॥२०३॥
इच्चाई अत्थि सद्दाल-पुत्त ! आजीवुवासगा तेणं ।
तं नो खलु गोसालं पडुच्च भणिओ इमं वयणं ॥२०४॥
सोऊण इमं तो सो चिंतइ महमाहणो इमो चेव ।
तं पाडिहारिएहिं इमं निमंतेमि भयवंतं ॥२०५॥
अब्भुट्ठिऊण तत्तो, वंदिय वीरं भणेइ-भयवं मे ।
पंचसया कुंभारा-र(व)णाण तुब्भे तहिं एह ॥२०६॥
तप्पडिबोहणहेउं याइ जिणवरो **महावीरो** ।
पडिवज्जिऊण भयवं वयणं सद्दालपुत्तस्स ॥२०७॥
अह अन्नया कयाई वायाहय-भंडगं स कोलालं ।
अंतोसालाहिंतो कड्ढेउं आयवे धरइ ॥२०८॥
तो तं पभणइ वीरो कोलालं भंडगं कुओ एयं ।
सो भणइ-भट्टियाए उदगं निट्ठुब्भए पढमं ॥२०९॥
छारेण करिसेण य मीसिज्जइ एगतो तओ पच्छा ।
आरोविऊण चक्के घडयाई किज्जए बहुयं ॥२१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो भणइ जिणो - 'भंडं किं उट्ठाणाइणा इमं होइ ?।
किं वाऽणुट्ठाणेणं ? भण भो ! सद्दालपुत्त ! तुमं ॥२११॥
सो भणइ - अणुट्ठाणा अपुरिसक्कारेण जायए सद्धं ।
नियया सव्वे भावा जम्हा भयवं इमं लोए ॥२१२॥
भा(ता)जइ एवं कोई वायाहयभंडगं तु कोलालं ।
भिंदिज्ज विक्खरिज्जा परिट्ठविज्जा अवहरिज्जा ॥२१३॥
तुह भारियाए सद्धिं जइ कोइ अग्गिमित्ताए ।
विउलाइं भोगाइं भुंजइ, किं तस्स कुणसि तुमं ? ॥२१४॥
सो आह - अहं भंते ! तं पुरिसं आओसेमि बंधेमि ।
तज्जिय ताडिय निच्छोडिऊण मारेमि य अकाले ॥२१५॥
भणइ जिणो जइ नत्थी, उट्ठाणाई तहा नियभावा ।
तो न तुह भंडगाणं अवहरणाइं कुणइ कोई ॥२१६॥
नो वा कुणसि तुमं तह आओसणबंधणाई कस्स वि य ।
अह भंडगाइयं तुह अवहरई कोइ जइ पुरिसो ॥२१७॥
जइ वा कुणसि तुमं पि हु आओसण-बंधणाइं पुरिसस्स ।
तम्हा जं जाणसि तुमं 'नियया भाव' त्ति तं मिच्छा ॥२१८॥
तो आजीवियदिट्ठिं चइउं **सद्दालपुत्त** कुंभकारो ।
पडिबुद्धो भणइ जिणं, भयवं ! मे कहसु नियधम्मं ॥२१९॥
भयवं पि साहु-सावयधम्मं परिकहइ महुरवाणीए ।
पडिवज्जिऊण सावय-धम्मं सो सगिहमणुपत्तो ॥२२०॥
पभणइ **अग्गिमित्तं**, देवाणुप्पिए मए जिणसगासे ।
पडिवन्नो जिणधम्मो आजीवियदिट्ठिं परिहरिउं ॥२२१॥
वच्चसु पिए ! तुमं पि हु रहमारोहिउं जिणं नमंसेउं ।
पडिवज्जसु जिणधम्मं, तो सा परिओसमावन्ना ॥२२२॥
न्हाया कयबलिकम्मा, कयकोउयमंगला सुनेवत्था ।
रहमारोहिउं गच्छइ नियचेडीवंदपरियरिया ॥२२३॥
अह तिपयाहिणपुव्वं वंदिय पंजलिउडा ठिया चेव ।
निसुणिय धम्मं पडि-वज्जिऊण नियगेहमणुपत्ता ॥२२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह **पोलास**पुराओ **सहसंब**वणाओ **वीरजि**णचंदो ।
निग्गंतूणं विहरइ पडिबोहिंतो भव्वकुमुए ॥२२५॥
अह **गोसालो** मंखलिपुत्तो निग्गंथदिट्ठिं पडिवन्नं ।
परिहरियाऽऽजीवियमयं नाउं **सद्दालपुत्तं** तु ॥२२६॥
आजीवियसंघसहिओ, ठाहि(ही) **आजीवियावसहिमेइ** ।
कइवयनियसीसजुत्तो पत्तो **सद्दालपुत्त**गिहं ॥२२७॥
आगच्छंतं तं दट्ठुं नो आढाइ सम्मदिट्ठी सो ।
तुसिणीओ संचिट्ठइ नो पडिवत्तिं कमवि कुणइ ॥२२८॥
पीढ-फलगाइहेउं गुणसंथवणं जिणस्स **वीरस्स** ।
तत्तो **गोसालेणं** तप्पुरओ काउमाढत्तं ॥२२९॥
कहं ?-
महमाहणो महा-गोवो महाधम्मकही तहा ।
महंतो सत्थवाहो य महानिज्जामओ विय ॥२३०॥
सद्दालपुत्त ! किं एत्थ ! देवाणुप्पिय ! आगओ ? ।
तत्तो **सद्दालपुत्तेणं** वुत्तं तप्पुरओ इमं ॥२३१॥
को णं एवंविहो भद्द ! केणऽट्ठेण एवं वुच्चई ।
तत्तो मंखलिपुत्तेण **गोसालेण** वियाहिया ॥२३२॥
उप्पन्ननाणदंसणरयणो तेलुक्कवहिय-महियकमो ।
तह तच्चकम्मसंपयजुत्तो महमाहणो **वीरो** ॥२३३॥
खज्जंता भिज्जंता छिज्जंता चेव लुप्पमाणा य ।
कूरकुतित्थियसावय-चोराईहिं भवारन्ने ॥२३४॥
धम्ममएणं दंडेण रक्खिउं पउरजीवसंघाए ।
पावइ निव्वाण-महावाडं **वीरो** महागोवो ॥२३५॥
उम्मग्गपडिय-सप्पहभट्ठे मिच्छत्तमोहिए जीवे ।
अट्ठविहकम्मतमपडल-पडयच्छन्ने य सव्वत्तो ॥२३६॥
निरुवमधम्मकहाए नित्थारइ चाउरंतसंसारा ।
महाधम्मकही तेणं समणो भगवं **महावीरो** ॥२३७॥
संसारमहारन्ने उप्पहपडिवन्नए बहू जीवे ।
सद्धम्ममयपहेणं पावइ निव्वाणवरनयरं ॥२३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो णं देवाणुपिया ! **सिद्धत्थ**नरिंदनंदणो भयवं ।
एक्को च्चिय पुहवीए महसत्थाहो **महावीरो** ॥२३९॥
संसारमहसमुद्दे उब्बुड-निब्बुड(ड्डु)णाइं कुणमाणे ।
नित्थारिय बहुजीवे धम्म[म]ईए उ नावाए ॥२४०॥
निव्वाणतीरऽभिमुहे पावइ नियकरयलेण सो जम्हा ।
तेण महानिज्जामय-सद्देणं भन्नए **वीरो** ॥२४१॥
तत्तो **सद्दालपुत्तो** सो सोऊणं गुणसंथवं ।
जहत्थं **वीरनाह**स्स हट्ठतुट्ठो पयंपइ ॥२४२॥
इयछेओ इयनिउणो तुममेवं वयणलद्धिसंपन्नो ।
मंखलिपुत्त ! पहू ?, मे धम्मायरिएण वीरेण ॥२४३॥
धम्मोवएसएण सद्धिं काउं विवायमिहमहुणा ।
तो **गोसालो** पभणइ 'नो एसट्ठे समट्ठे'त्ति ॥२४४॥
जम्हा जहा को वि नरो तरुणो बलवं सुपीवरसरीरो ।
अय-मिग-सूअर-कुक्कुड-तित्तिरि-लावाइए जीवे ॥२४५॥
हत्थे वा पाए वा पुच्छे वा गहिय निच्चले धरइ ।
एमेव ममं **वीरो** धरइ दढं हेउ-जुत्तीहिं ॥२४६॥
तं न सहो काउमहं वायं **सद्दालपुत्त वीरेण** ।
तुह धम्मायरिएण परवाइगइंदसीहेण ॥२४७॥
तो **वीरजि**णजहट्ठियगुणगणहावज्जिओ सुदिट्ठी ।
सो **सद्दालपुत्त**नामा उवासगो भणइ **गोसालं** ॥२४८॥
जं **वीर**जिणस्स तुमं गुणसंथवं करेसि सब्भूयं ।
पीढ-फलगाइएहिं तुमं निमंतेमि तेणाहं ॥२४९॥
'नो धम्मो'त्ति तवो त्ति य काउं, तं गच्छ कुंभसालासु ।
मह पाडिहारियासुं जहामुहं चिट्ठ तं तत्थ ॥२५०॥
तो तव्वया ठाउं तत्थ तओ पन्नवेइ सद्दिट्ठिं ।
आजीवियदिट्ठिं पइ बहुसो **सद्दालपुत्तं** सो ॥२५९॥
नो तं निग्गंथाओ पावयणाओ स चालिउं तरइ ।
ताहे संतो तंतो **पोलासपु**राओ निक्खंतो ॥२५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह सद्दालपुत्तस्स तस्स चउदससमा वइक्कंता ।
सावयधम्मं रम्मं सम्मं परिवालियंतस्स ॥२५३॥
पन्नरसम्मि य वरिसे जिट्ठसुए ठविय गिहनियोगं सो ।
सावयपडिमा कमसो एक्कारसं काउमारद्धो ॥२५४॥
''दंसण-वय-सामाइय-पोसह-पडिमा-अबंभ-सचित्ते य ।
आरंभ-पेस-उद्दिट्ठ-वज्जए समणभूए अ ॥२५५॥
पोसहियस्सेगसुरो मिच्छद्दिट्ठी कयाइ रयणीए ।
गहिउग्गखग्गलट्ठी उवसग्गं काउमाढत्तो ॥२५६॥
'**सद्दालपुत** ! जइ नो मुंचसि सीलव्वयाइं नियमाइं ।
तो तुह देहं असिणा खंडाहिंडं करिस्सामि ॥२५७॥
इअ दुन्नि तिन्नि वारे भणिओ जाहे न खुब्भए ताहिं ।
भणइ सुरो तुह पुत्ते तिन्नि वि हणिऊण तुह पुरओ ॥२५८॥
तुह देहं रुहिरेणं सिंचिस्सं, जेण तं अकाले वि ।
ववरोविज्जसि नूणं अट्टवसट्टो सजीयाओ ॥२५९॥
तत्तो य जिट्ठ-मज्झिम-लहुए कमसो विणासिउं पुत्ते ।
पत्तेयं मायाए, दंसइ नवमंससुल्लाइं ॥२६०॥
रुहिरेणं तद्देहं, सिंचइ तहवि तं अविचलं नाउं ।
गाढयरमासुरत्तो सुराहमो भणिउमाढत्तो ॥२६१॥
सद्दालपुत्त ! जइ नो दंभं मुंचसि तुमं इमं अहुणा ।
तो तुह धम्मसहाया समसुह-दुक्खा य जा एसा ॥२६२॥
भज्जा अग्गिमित्ता, तं तुह पुरओ विणासिऊण अहं ।
काऊण मंससोल्ले नव तं रुहिरेण सिंचिस्सं ॥२६३॥
सोऊण इमं खुभिओ चिंतइ हणिऊण पुत्ततियगं मे ।
को एस दुरायारो भज्जं मह अग्गिमित्तं पि ॥२६४॥
धम्माणुरत्तं धम्मसहायं च वंछए हणिउं ।
तं दुट्ठमिमं गेण्हामि, धावए तं निगिण्हेउं ॥२६५॥
सो आसाइय खंभं 'धावह धाव' त्ति करइ हलबोलं ।
देवो तब्भीओ इव गयणे अद्दंसणं पत्तो ॥२६६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोऊण **अग्गिमित्ता** गरुयं कोलाहलं नियययपइणो ।
आगंतूणं पभणइ विणएणं नाह ! किं एयं ? ॥२६७॥
सो भणइ सुरसरूवं, तत्तो भज्जाए सो इमं भणिओ ।
तुह तणया सव्वे वि हु अक्खयदेहा गिहे संति ॥२६८॥
देवेण दाणवेण य तुह मिच्छि(च्छ)द्दिट्ठिणा इमो विहिओ ।
उवसग्गो केणाऽवि हु नूणं ता नाह ! तुममिण्हि ॥२६९॥
आलोयण-निंदण-गरिहणाहिं सोहेसु नियय्वयभंगं ।
सो वि हु तव्वयणाओ 'तह'त्ति पडिवज्जए सव्वं ॥२७०॥
सावयपरियायं सो परिवालेऊण वीसवासाइं ।
काऊण मासमेगं पज्जंते अणसणं विहिणा ॥२७१॥
सोहम्मे चउपलिओ **अरुणभू**यविमाणअहिवई देवो ।
होउं **महाविदे**हे सिज्झिस्सइ खीणकम्ममलो ॥२७२॥
इति सद्दालपुत्तकथानकं । छ । शुभं भवतु । छ ॥७॥

८ - [सिरिमहासयगकहाणयं] -

रायगिहम्मि य **सेणिय**राया गुणसिलयचेइ[य]उज्जाणं ।
नामेण **महासयगो** निवसइ गाहावई तत्थ ॥२७३॥
रेवई पामोक्खाओ भज्जाओ तस्स तेरस अहेसि ।
अट्ठ य हिरन्ना(न्न) कोडी कमसो निहि-वुड्ढि-वित्थरओ ॥२७४॥
अट्ठ वया गावीणं दसगोसाहस्सिएण माणेण ।
सगड-हल-पोयमाई आणंदगमेण विन्नेयं ॥२७५॥
रेवइनामाए महासयगस्स भारियाए पढमाए ।
कोलघरिया य अट्ठ य हिरन्ना(न्न) कोडीओ अट्ठ वया ॥२७६॥
सेसाण भारियाणं दुवालसण्हं पि आसि पत्तेयं ।
एगा हिरन्नकोडी वओ य एक्केक्कओ चेव ॥२७७॥
अह अन्नया कयाई गुणसिलए चेइए समोसरिओ ।
वीरजिणिंदो देविंद-वंदिओ सत्तहत्थतणू ॥२७८॥
देवेहिं समोसरणे रइए सेणियनिवो सनायरओ ।
एइ महासयगो वि य परिवारजुओ जिणं नमिउं ॥२७९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह तिपयाहिणपुव्वं नमंसिउं जिणवरं महावीरं ।
उवविट्ठा सट्ठाणे कयंजली नर-सुराईया ॥२८०॥
भयवं पि साहु-सावयधम्मं परिकहइ महुरवाणीए ।
गिण्हइ य महासयगो सावयधम्मं पहट्ठमणो ॥२८१॥
तह परिग्गहपरिमाणं गिण्हइ सो जिणवरिंदपासम्मि ।
निहि-वुड्ढि-वित्थरेसुं पत्तेयं अट्ठकोडीओ ॥२८२॥
अट्ठ वया दससहस्सा सेसाण चउप्पयाण मह नियमो ।
दुपए तेरस भज्जा तासिं च परिग्गहे जयणा ॥२८३॥
रेवइपमुह-सभज्जासेसम्मि मेहुणविहिं परिहरामि ।
आहारभूसणाई **आणंदगमेण** विन्नेयं ॥२८४॥
दोणदुगपमाणाए हिरण्णभरियाए कंसपाईए ।
कल्लाकल्लिं कप्पइ ववहरिउं तदुवरिं नियमो ॥२८५॥
अह अन्नया कयाइं, संचिंतइ **रेवई** रयणिविरमे ।
मणवंछिओ न जायइ मह संभोगो वि दइएण ॥२८६॥
बारसाहिं सवत्तीहिं वाघाएणं तओ य मह जुत्तं ।
हणिउं ससवत्तीओ सत्थ-ऽग्गि-विसप्पओगेणं ॥२८७॥
तत्तो छ सवत्तीओ विसेण छच्चेव सत्थघाएणं ।
अइकूरऽज्झवसाया पन्त(व्व)त्ता **रेवई** हणिउं ॥२८८॥
तासिं दुवालसण्हं हिरन्नकोडी दुवालस वयाइं ।
कोलघरिअए अहिठइ सव्वासिं **रेवइ** व्व तओ ॥२८९॥
वग्घायविरहिया सा भुंजइ नियभत्तुणा समं भोए ।
महु-भज्ज-मंसमाईसु गिद्धा अइनिग्घिणा जाता ॥२९०॥
अह अन्नया कयाई नयरम्मि अमारिघोसणे विहिए ।
कोलघरपुरिसेहिं पइदियहं गोणपोथदुगं ॥२९१॥
तत्थेवुद्दवा(व्वा)विय आणाविय नियघरम्मि पच्छन्नं ।
महु-मज्ज-मंसमाई आहारंती गमइ कालं ॥२९२॥
भत्ता जाणंतो वि हु तीए सरूवं जहट्ठियं सव्वं ।
आणाबलाभिओगो भणिओ न जिणेहिं धम्मम्मि ॥२९३॥
तो नो बलाभिओगा न वारइ न य देइ तीए उवएसं ।
अज्जोग्गयं मुणंतो उविक्खए तं महापावं ॥२९४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीलव्वयाइं सम्मं पालंतो सावगो **महासयगो** ।
वरिसाण चउद्दसगं अइक्कमित्ता महाभागो ॥२९५॥
पन्नरसम्मि य वरिसे जिट्ठसुए गिहभा(भ)रं निवेसेउं ।
पोसहसालाए सयं पडिवज्जइ धम्मपन्नत्तिं ॥२९६॥
तत्तो सा तब्भज्जा उम्मत्ता भोगलोलुया संती ।
उम्मुक्ककेसपासा पोसहसालं उवागम्म ॥२९७॥
मोहुम्मायकराइं इत्थीजणसुलहहावभावाइं ।
उवदंसंती पभणइ नियभत्तारं **महासयगं** ॥२९८॥
'हं हो ! समणोवसग ! मए समं जं न भुंजसे भोए ।
तं किं धम्मे पुन्ने सग्गे मोक्खे[व] अहिलासो ? ॥२९९॥
धम्माणुभावओ च्चिअ भोगा लब्भंति पुन्नमंतेहिं ।
ते तुज्झ संति विउला तो धम्मेणं किमन्नेणं ॥३००॥
तरुणो पुरिसो तरुणी य इत्थिआ, ताण जं परा पीई ।
सो च्चिय सग्गो भन्नइ बुहेहिं सो तुज्झ साहीणो ॥३०१॥
अदिट्ठमुक्खसुक्खस्स कारणे दिट्ठभोगपरिहरणं ।
जं कुणसि तं न जुत्तं जम्हा मूढाण एस ठिई ॥३०२॥
तम्हा कट्ठाणुट्ठाणमणुचियं मुंच भो ! **महासयगा** ! ।
अणुरत्ताए मए सह भुंजसु मणवंछिए भोए ॥३०३॥
तव्वयणवायगुंजाहिं चालिओ नो **महासयग**मेरू ।
भणिउं बहुप्पयारं जहाऽऽगयं **रेवई** वि गया ॥३०४॥
एक्कारसपडिमाओ पालिय संलेहणं च काऊणं ।
विहिणा अणसणमेसो पडिवज्जइ वीसमे वरिसे ॥३०५॥
अह तत्थ **महासयग**स्स तस्स घोरं तवं तवंतस्स ।
उप्पन्नमोहिनाणं तेण य सो पिक्खए खित्तं ॥३०६॥
पुव्वेण **लवण**सायर-मज्झे जोयणसहस्समेगं जा ।
एवं दक्खिण-पच्छिम-उत्तरओ चुल्लहिमवंतं ॥३०७॥
उड्ढं जा सोहम्मं अहे य रयणप्पभाए पुढवीए ।
लोलुय-अच्चुयनरयं चउरासीवाससहस्सठिइं ॥३०८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह अन्नया कयाई पुणो वि सा **रेवई महासयगं** ।
पभणइ पुव्वगमेणं पोसहसालं समुवगम्म ॥३०९॥
मुत्तूण य मज्जायं वारा दो तिन्नि भणइ सा जाव ।
तो वयणमासुरत्तो दाउं अवहीए उवओगं ॥३१०॥
पभणइ **महासयगो रेवईए** अल्लसरोग-अभिभूया ।
अट्टदुहट्टा मरिउं, **रयणप्पह** पढमपुढवीए ॥३११॥
लोलुयम्मि नरए चउरासीवरिससहस्सठिइम्मि ।
नेरइयत्ताए तुमं उववज्जसि सत्तरत्तंतो(ते) ॥३१२॥
विगयमया भयभीया, तत्तो सा सुणिय भत्तुणो वयणं ।
चिंतइ कुमारेणं केण वि मं मारिही रुट्ठो ॥३१३॥
ता नूणमवक्कमणं जुत्तं ति चिंतिऊण नियगेहं ।
पत्ता अट्टदुहट्टा अलसरोगेणं मरिऊणं ॥३१४॥
उप्पन्ना **रयणप्पह**-पुढवीए **लोलुअच्चुए** नरए ।
नेरइयत्ताए महा-दुक्खानलतत्तगत्ता सा ॥३१५॥
एत्थंतरम्मि भयवं **वीरजिणो गोयमा**इसमणेहिं ।
जुत्तो पत्तो **वीभार**पव्वए गुणसिलुज्जाणे ॥३१६॥
तत्थ समोसरणम्मि विहिए देवेहिं **वीर**जिणचंदो ।
सेणियनिवम्मि पत्ते सनायरे धम्ममह कहइ ॥३१७॥
तयणंतरमामंतिय **गोयम**गणहारिणं जिणो भणइ ।
इह **रायगि**हे नयरे अंतेवासी ममं अत्थि ॥३१८॥
नामेण **महासयगो** उवासगो विहियसावयप्पडिमो ।
संलेहणं च काऊणं पडिवन्नो अणसणं विहिणा ॥३१९॥
तस्स तयावरणखओवसमाओ ओहिनाणमुप्पन्नं ।
आगम्म भोगलोला तब्भज्जा **रेवई** तत्थ ॥३२०॥
उवसग्गं कुणमाणी भणिया रुट्ठेण तेण सा एवं ।
मरिउं नरए गमिहिसि **रेवइ** ! ए ! सत्तरत्तंतो ॥३२१॥
तं[न] उवजुत्तं, जम्हा पडिवन्ने उत्तमम्मि ठाणम्मि ।
संतेण वि जेण परो दूमिज्जइ, तं न वत्तव्वं ॥३२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता गच्छ तुमं जह सो, एयट्ठाणस्स निंदणाईयं ।
काउं पायच्छित्तं पडिवज्जइ तह लहुं कुणसु ॥३२३॥
तत्तो **गोयमसामी** तहत्ति पडिवज्जिऊण जिणवयणं ।
गच्छइ **महासयग**स्स, मंदिरं ईरियसंपन्नो ॥३२४॥
इंतं **गोयम**सामिं दट्ठूणं हट्ठ-तुट्ठहयहियओ ।
वंदेइ **महासयगो** विणएणं, गोयमो वि तओ ॥३२५॥
भणिऊण जिणाभिहियं सम्मं चोएइ हेउ-जुत्तीहिं ।
सो वि हु तव्वयणेणं पडिवज्जइ जाव पच्छित्तं ॥३२६॥
सावयपरियायं सो परिवालेऊण वीस वासाइं ।
काऊण मासमेगं पज्जंते अणसणं विहिणा ॥३२७॥
सोहम्मे अरुणवडिंसयम्मि चउपल्लआउयं देवो ।
अणुपालिय सिज्झिस्सइ **महाविदे**हम्मि खित्तम्मि ॥३२८॥

इति महाशतकश्रावककथानकम् ॥छ॥ ८॥

९ - [नंदिनीपिता कथानकम्]-

सावत्थी जियसत्तू कुट्ठं नंदिणिपिया य **कोडुंबी** ।
अस्सिणि भज्जा, वज्जा चत्तारि हिरण्णकोडीओ ॥३२९॥
निहि-वुड्ढि-वित्थरेसुं, चत्तारि वया य, जिणसमोसरणे ।
पडिवज्जिय गिहिधम्मं परिवालइ वरिसचउदसगं ॥३३०॥
पनरसमे पुण वरिसे जिट्ठसुए ठविय गिहभा(भ)रं सयलं ।
एक्कारस पडिमाओ पालइ सम्मं निरुवसग्गं ॥३३१॥
नंदिणिपिया य सावय-पज्जायं पालिऊण वासाइं ।
वीसं, काउं मासं, पज्जंते अणसणं विहिणा ॥३३२॥
सोहम्मे चउपलिओ **अरुणगव**विमाणअहिवई देवो ।
होउं **महाविदेहे** सिज्झिस्सइ खीणकम्ममलो ॥३३३॥
इति नंदिनीपिता कथानकम् ॥छ॥ ९ ।

९ - [लंतियपिया कहाणयं]-

सावत्थी जियसत्तू कोट्ठं, लंतियपिया य कोडुंबी ।
फग्गुणि भज्जा, वज्जा चत्तारि हिरन्नकोडीओ ॥३३४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निहि-वुड्ढि-वित्थरेसुं चत्तारि वया य, जिणसमोसरणे ।
पडिवज्जिय गिहिधम्मं परिवालइ वरिसचउदसगं ॥३३५॥
पनरसमे पुण वरिसे, जिट्ठसुए ठविय गिहभा(भ)रं सयलं ।
एक्कारस पडिमाओ पालइ सम्मं निरुवसग्गं ॥३३६॥
लंदियपिया सावय-पज्जायं पालिऊण वासाइं ।
वीसं, काउं मासं, पज्जंते अणसणं विहिणा ॥३३७॥
सोहम्मे चउपलिओऽ**रुणकील**विमाणअहिवई देवो ।
होउं महाविदेहे सिज्झिस्सइ खीणकम्ममलो ॥३३८॥

इति लंदियपिताकथानकम् । १०। मङ्गलं महाश्रीः ॥

ग्रंथ प्रशस्तिः -

[१] आणंदाईण एयं सुचरियदसगं सत्तमंऽगाणुसारा,
संखेवेणं विचित्तं कयमिह **गणिणा पुन्नभद्देण** भद्दं ॥
सीसेणं वाइविंदप्पहु **जिणवइणो**, विक्कमाइच्चवासे,
५ ७ १२
वट्टंते बाण-सेलाऽसिसिरकरमिते कण्हछट्ठीअ जिट्ठे ॥३३९॥

प्रतिलेखनप्रशस्तिः

(१) गुरुगिरिविहितास्थः पुण्यपर्वप्रवालः ।
सुभगविमलमुक्ता शब्दधर्मैकहेतुः ॥
सफलमृदुलताढ्यः स्फारतेजोविभूति-
स्त्रिजगति वर(रि)वर्त्ति श्री**मदूकेशवंशः** ॥३४०॥
(२) साधुस्तत्र बभूव भूमिविदितः **क्षेमंधरः** श्रीधरः
सत्यासक्तमना वृषप्रणयवान् कौमोदकीभावभृत् ॥
यश्चक्रेऽ**जयमेरु**नाम्नि नगरे श्री**पार्श्व**नेतुः पुरः ।
प्रेम्णा सद्व्रजकष्टवृष्टिहतये शैलं महामण्डपम् ॥३४१॥
(३) भेजुस्तस्य महोदधेर्बहुतराः रत्नोपमाः सूनवः
सम्पूर्णाः गुणसद्व्रजैः सुरुचयो देवश्रियः कुक्षिजाः ॥
कोप्येतेषु जगद्वरः सुकृतिनामग्रेसरः कौस्तुभः
श्रीश्रीमत्पुरुषोत्तमैकहृदये वासित्वमैद् यो गुणः ॥३४२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४)　श्रीमत्**पार्श्व**स्य नेतुः सदनममदनं भव्यनेत्राब्जमित्रं
पुर्यां श्री**जेसल**स्य व्यरचिदचिराच्चाऽभितो भूषणानि ॥
गेहे साधर्मिकोर्वीरुहवनमनुवी(वि)च्छिन्नवात्सल्यकुल्यां
पूरेणाऽवीवहद् यो मरुषु किमपरं प्राप कल्पद्रुमत्वम् ॥३४३॥

(५)　शालीनतालीश्री(श्रि)शीलं, यदात्मजमपालयत् ।
तस्य **साढलही** नाम्ना सा बभूव सधर्मिणी ॥३४४॥

(६)　तस्याऽऽसतेऽक्षतनयास्तनयास्त्रयोऽमी
तेषामयं धुरि **यशोधवलो** यशोऽब्धिः ॥
माध्यन्दिनो **भुवनपाल** इलापसंस-
दुज्ज्वालकीर्त्तिरनुजः **सहदेव** एषः ॥३४५॥

(७)　इह [हि] **भुवनपालः** प्रीतदिक्चक्रवालः ।
सुगुरुजिनपतीशस्तूपमूर्ध्नि ध्वजस्य ॥
विघटितमधिरोहं कारयामास पद्या
जिनपतिरथयानं चक्रवर्तीव पद्मः ॥३४६॥

(८)　[भामा.] तस्या प्रिया त्रिभुवनपाल धीदा, रघुप्रभोरिव जनकस्य धीदा।
पुत्रद्वयं समजनि **खेमुसिंहाऽभया**ह्वयं कुश-लवलीलमस्य ॥३४७॥

(९)　स धन्यकृतपुण्यतां सततशालिभद्रात्मतां
किलाऽवनितुमात्मनो मुनिवरीवर(य)स्यामिमां ॥
सुधार्मिकजनव्रजोपवनसारणिः श्रीभरः
स्म लेखयति पुस्तिकां **भुवनपालः**(ल-) साधुर्मुदा ॥३४८॥

(१०)　मेघाल्याम्बुदवृन्दमुक्तसलिलाऽऽपूरे मणिज्योतिरुद्-
द्योतिच्छत्रपरीतचक्रिपृतनाभृच्चर्मरत्नश्रियम् ।
मध्येऽम्भोधिमहीतलं दिनमणी भास्वत्ततः संवृतं;
यावद् विन्दति तावदत्र जयतादेषाऽधिकं पुस्तिका ॥३४९॥

—x—

[अथ चूर्णिः]

आनन्दकथायां किञ्चिल्लिख्यते - 'दिसि जत्तिय'० गाहा (७१)- दिसि जत्तियाणं 'ति दिग्यात्रा - देशान्तरगमनं प्रयोजनं येषां तानि । 'संवाहणियाणं'

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ति संवहनं क्षेत्रादिभ्यस्तृण-काष्ठ-धान्यादेर्गृहादावानयनं, तत्प्रयोजनानि सांवाहनिकानि। मुत्तूण० गाथा (७३) 'गंधकासाइयं' ति गन्धप्रधाना कषायेण रक्ता शाटिका गन्धकाषायी । 'अल्लमहु०' गाहा । (७४) - 'खीरामलयं ति अबद्धाऽस्थिकं क्षीरमिव मधुरं वा यदाऽऽमलकं तत् क्षीरामलकम् । 'तिल्लं सयपाग'० गाहा (७५) - सयपाग - सहस्सपागं' त्ति द्रव्यशतस्य क्वाथशतेन सह यत् पच्यते कार्षापणशतेन वा तत् शतपाकं, एवं सहस्रपाकम् । 'गंधट्टयं' ति गन्धद्रव्यैरुपल-कुष्ठादिभिर्युक्तोऽट्टश्चूर्णो गन्धाट्टस्तम् । अट्ठहिं गाहा (७६) 'उट्टिअघडिएहिं' ति उट्टिका महन्मृन्मयभाण्डं, तत्पूरणाय घटा उचितप्रमाणा नाऽतिलघवो नाऽतिमहान्तः । 'खोमजुअलं' ति कार्पासिकवस्त्रयुगलं । कप्पूर०' गाहा (७७) 'एगं च सुद्धपउमं' ति कुसुमान्तरवियुतं पुण्डरीकं वा शुद्धं पद्मम्, मालतीमाला जातिपुष्पदाम । मट्ठं० गाहा (७८) 'मट्ठं कन्निज्जजुगं' ति मष्टं अचित्रवत्कर्णाभरणम् । भोयण० गाहा (७९) 'कट्ठपेज्जयं ति काष्ठपेया मुद्गादियूषः, घृत-तिल-तन्दुलएला वा । कलसूय० गाहा (८०) १ 'कलसूय'त्ति कलायश्चणकाकारो धान्यविशेषः उपलक्षणत्वात् मुद्-मोषास्तेषां सूपः । चुच्चुय० गाहा (८१) चूचुकादयः शाका लोकप्रसिद्धाः, 'पालक्का माहुरयं' ति पालक्का वल्लीविशेषः, माहुरयं अनाम्लरसशालनकं । आगासोदग० गाहा (८२) पंचसुगंधियं' ति एभिः पञ्चभिः-एला-लवङ्ग-कर्पूर-कक्कोल-जातीफललक्षणैः, सुगन्धिभिर्द्रव्यैरभिसिक्तं' पञ्चसौगन्धिकम् ॥

कुण्डकौलिककथायां किञ्चिल्लिख्यते - अथाऽपराह्नसमयेऽशोकवाटिकायां प्रतिपन्नश्रीमन्महावीरधर्मप्रतिज्ञं कुण्डकौलिक-श्रमणोपासकं कश्चिन्मिथ्यादृष्टिर्गोसालकमतानुयायी देवो गगनस्थितः प्राह, प्रवरा [१६७] प्रशस्या गोशालकस्य मंखलिपुत्रस्य धर्मप्रज्ञप्तिर्धर्मप्ररूपणा । कुत इत्याह - यस्मान्नो नैव 'उत्थानं' = उपविष्टस्य ऊर्ध्वीभवनं, 'कर्म' = गमनागमनादिकं, 'बलं' शारीरं वीर्यं, जीवप्रभवं वा । पृच्छ्यते वा-नो नैव पुरुषकारश्च पराक्रमश्च-पुरुषकारपराक्रमं समाहारः, तस्य योगः सम्बन्धः जीवानामिति शेषः वर्त्तते । कोऽपि कश्चिदपि । तत्र पुरुषकारः पुरुषाभिमानः, स एव सम्पादितस्वप्रयोजनः पराक्रमः । तथा सर्वेऽपि भावा यत् = यस्मात्, वर्णिताः = प्रतिपादिताः, गोशालकमते-यैर्यथा भवितव्यं ते तथैव भवन्ति - न पुरुषकारबलादन्यथा कर्तुं शक्यन्ते इति । ''न भाविनोऽस्ति नाशः', १ । तथा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति हि भाव्यं विनापि यत्नेन ।
करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति ॥२॥

'समणस्स० गाहा [१६९] श्रमणस्य भगवतः पुनर्वीरस्य न चारु न शोभना, धर्मप्रज्ञप्तिर्धर्मप्ररूपणा । यस्माद् हेतोरुत्थानाद्याः सन्ति विद्यन्ते । इह = अत्र वीरप्रज्ञप्तौ । तथाऽनियताः सर्वे भावाः सन्ति इति क्रियायोगः । इदमत्र तात्पर्यं, उत्थानादेर्भवन्ति कृत्या एवंरूपाः, ततश्च नास्ति एतदुत्थानादि जीवानां, एतस्य पुरुषार्थाऽप्रसाधकत्वात्, तदसाधकत्वं च पुरुषकारसद्भावेऽपि पुरुषार्थ-सिद्ध्यनुपालम्भादिति । अह कुंड० गाहा [१७०] अह भणसि गाहा [१७१] - व्याख्या - अथ कुण्डकौलिकस्तं देवं प्रभणति - उत्थान-कर्म-वीर्यादिकं यदि नास्ति, तदा त्वं [त्वया] कथं, केन हेतुना, एषा देवऋद्धिः-सुरसम्पद् लब्धा-प्राप्ता ? अथैवं वदसि-अनुत्थानादिना तपोब्रह्मचर्यादीनामकरणेन इमा एषा देवर्द्धिः समनुप्राप्ता-लब्धा, तदा किं केन कारणेन ते न लभन्ते देवर्द्धि, येषां जीवानां उत्थानादि तपश्चरणादि कारणं नास्ति ? । अयमभिप्रायः-यथा त्वं पुरुषकारं विना देवः संवृत्तः, एवं सर्वेऽपि जीवाः । ये उत्थानादेव जीवाः, ते देवाः प्राप्नुवन्ति [भवन्ति] । तवैतदेव 'मिट्ठं' इत्युक्त्वा नाद्यपभाए(?) पक्षे दूषणं 'अवत्तया'इयं ऋद्धिरुत्थानादिना लब्धा, ततो यदि वदसि 'प्रवरा गोशालस्य प्रज्ञप्तिः, असुन्दरा महावीरधर्मप्रज्ञप्तिः' तन्मिथ्या वचनं, भवतैव तस्य व्यभि-चारादिति। इय कुंडगोलिएणं गाहा (१७२) 'इय एवं कुण्डकौलिकेन श्रमणोपासकेन भणितः सः देवः शङ्कितः संशयवान् जातः - किं गोशालकमतं सत्यं उत महावीरमतं ? महावीरमतस्य युक्तितोऽनेन प्रतिष्ठितत्वादिति विकल्पवान् संवृत्तः इत्यर्थः । निजे मनसि-स्वचित्ते, उपलक्षणत्वात् कंखिए भेयमावन्नो कलुसमावन्नो' । तत्र काङ्क्षितो महावीरमतमपि साधितं युक्त्युपपन्नत्वादिति विकल्पवान् संवृत्तः, भेदमापन्नः भेदमुपागतः गोशालकमतमेव साध्विति निश्चयादपोहत्वात्, कलुषमापन्नः प्राक्तननिश्चयविपर्ययलक्षणं गोशालकमतानुसारिणां मते मिथ्यात्वं प्राप्त इत्यर्थः । अथवा कलुषतां 'जितोहमनेनेति' खेदरूपमापन्न इति ततश्च न क्षमो वक्तुमुत्त-रमाख्यातुं, मुक्त्वा मुद्रादिकं गतो देव इति गाथार्थः ।

सद्दालपुत्तकथायां किञ्चिल्लिख्यते-पोलास गाहा (१८५) 'आजीवुवासगो' आजीवका गोशालकशिष्यास्तेषामुपासकः । 'लद्धट्ठो (गाहा १८६) - तत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लब्धार्थः श्रवणेन गृहीतार्थबोधनः, 'पृष्टार्थः' संशये सति, विनिश्चिता[र्थोऽ]र्थ-विदुत्तरलाभे सति। पंचसय गाहा (१८८) 'दिन्न-भय-भत्त-वेयण' त्ति दत्त-भृति-भक्त-वेतनाः । 'घड' गाहा (१८९) पिठरान् स्थालीः, अर्धघटान् - घटार्धमानान् वारकान्, गडुकान्-करकान् वाऽर्धघटिकान्, उडिकाः सुरा-तैलादिभाजनविशेषान्, कलशान् आकारविशेषवतो वृद्धघटान्, अलिञ्जराणि महत उदकभाजनविशेषान्। सद्दालपुत्त गाहा (१९३) 'महमाहण' त्ति - मा हन्मि न हन्मि' इत्यर्थः, आत्मना वा हननिवृत्तः परं प्रति 'मा हन' इत्येवमाचष्टे यः सः 'माहनः' । स एव मनःप्रभृतिकरणादिभिराजन्मसूक्ष्मादि भेदभिन्नहन[न]-निर्वृत्तत्वात् - महामाहनः । सर्वज्ञः 'साकारोपयोगसामर्थ्यत्वात् । 'अरह'त्ति अर्हन् प्रातिहार्यादिपूजार्हत्वात्, अविद्यमानं रह एकान्तः सर्वज्ञत्वात् यस्याऽसौ अरहः । 'केवली' केवलानि परिपूर्णानि शुद्धानि अनन्तानि वा ज्ञानादीनि यस्य सन्ति सं केवली । 'जिनो' रागादिजेतृत्वादिति। उप्पन्ननाण गाहा। (१९४) उप्पन्न - आवरणक्षयेण आविर्भूते ज्ञान-दर्शने धारयति-इत्येवंशील 'उत्पन्नज्ञान-दर्शनधारी। 'तेलोक्क-वहिय-महियकमो'त्ति-त्रैलोक्यं (त्रैलोक्येन) त्रिलोकवासिना जनेन, 'वहिय' त्ति समग्रैश्वर्याद्यतिशयसन्दोहदर्शन समाकुलस्वचेतसा हर्षभरेण प्रबलकुतूहल-बलादनिमेषलोचनेनावलोकितः । 'महिय'त्ति सेव्यतया वाञ्छितौ क्रमौ यस्य । एतदेव व्यनक्ति सुरासुरनृपतिभिः पूजितौ पुष्पादिभिः, सत्कारितौ वस्त्रादिभिः, प्रणतौ क्रमकमलौ पादपद्मौ यस्य स तथा । पच्चुप्पन्न० गाहा (१९५) 'पच्चुप्पनाऽणागयअईयसमयस्स जाणओ' प्रत्युत्पन्नाऽनागतातीतसमयस्य ज्ञापकः । 'तह तच्चकम्मसंपयजुत्तो' - (तथा) तथ्यानि सत्फलानि अव्यभिचारितया यानि कर्माणि क्रियाः तत् तत्सम्पद(दा)स्तत्तत्समृद्ध्या संयुक्तः सहितः, क्षीणमोहश्च । 'अह० गाहा (२०८) 'वायाहयभंडगं स कोलालं' ति - वातेन हतं वायुना ईषच्छोषमुपनीतं तच्च तद् भाण्डं च, पण्यं भाजनं वा 'कौलालं' - कुलालाः कुम्भकाराः, तेषामिदं कौलालं । ताजइ गाहा (२१३) 'भिंदिज्ज' इत्यादि, भिन्द्यात् काणताकरणेन विकिरन्, इतस्ततो विक्षिपन् परिष्ठापयन् बहिर्नीत्वा त्यजन् अपहरन् चोरयन् । सो आह० गाहा (२१५) आउसेमि' इत्यादि-आक्रोशामि 'मृतोऽसि त्वं' इत्यादिभिः शापैरभिशपामि, बध्नामि रज्ज्वादिना, तर्जयित्वा 'ज्ञास्यसि रे दुष्टाचार ! वा' इत्यादिभिर्वचनविशेषैः, ताडयित्वा चपेटादिना, निच्छोटयित्वा धनादित्याजनेन, मारयामि जीविताद्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यपरोपयामि, अकाले अप्रस्तावे पठने वाऽर्थः । न्हाया० गाहा (२२३) 'बलि'कर्म लोकरूढं कौतुकं मषीपुन्द्रकादि, मङ्गलं दध्यक्षतादि, एते एव प्रायश्चित्तमिव प्रायश्चित्तं दुःस्वप्नादिप्रतिघातकत्वेनाऽवश्यं कार्यत्वादिति । खज्जंता० ग्गहा (२३४) खाद्यमानान् मृगादिभावे व्याघ्रादिभिः, भिद्यमानान् मनुष्यादिभावे कुन्तादिना, छिद्यमानान् खड्गादिना, लुप्यमानान् चौरादिभिः बाह्योपध्यपहारतः । धम्म० गाहा (२३५) 'निव्वाणमहावाडं'ति सिद्धिमहा गोष्ठानविशेषं । 'महागोपः' - गोपो रक्षकः, स च इतरगोरक्षकेभ्योऽतिविशिष्टत्वान्महानिति महागोपः । उम्मग्ग० गाहा (२३६) - उन्मार्गपतितान्, आश्रितकुदृष्टिशासनान्, सत्पथभ्रष्टान्, त्यक्तजिनशासनान्, मिथ्यात्वमोहितान्, अष्टविधकर्मैक-तमःपटलं-अन्धकारसमूहः, स एव पटलस्तेन छन्नान् । इय छेओ० गाहा (२४३) 'इय' एवं उपलभ्यमानाद्भुतप्रकारेण, एवमन्यत्रापि । छेकः प्रस्तावज्ञः, कलापण्डित इति वृद्धाः । इति निपुणो सूक्ष्मदर्शी, कुशल इति वृद्धोक्तम् । प्रभुः समर्थः । जम्हा जहा० गाहा (२४५) तरुणोऽपि प्रवर्धमानवयाः, वर्णादिगुणोपेतः इत्यर्थः । बलवान् सामर्थ्यवान् । [हत्थे वा०]गाहा (२४६) यद्यपि अजादीनां हस्तो न विद्यते, तथाऽपि अग्रेतनपादौ हस्त इव हस्त इति कृत्वा 'हस्ते' इत्युक्तम्, यथासम्भवं तेषां हस्तपादपुच्छादीनि योजनीयानि । महाशतककथानके किञ्चिल्लिख्यते -'रेवई'० गाहा (२७६) 'कोलघरिया य' त्ति कुलग्रहात् पितृगृहादागताः कौलगृहिक्यः । पभणेइ० गाहा (३११) 'अलसरोग अभिभूय'त्ति अलसकेन विसूचिकाविशेषलक्षणरोगेण ग्रस्ता, तल्लक्षणं चेदम्-

'नोर्ध्वं व्रजति नाऽधस्तादाहारो न च पच्यते ।
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः ॥१॥

समाप्ता चूर्णिः ॥छ॥ ग्रंथाग्रं - श्लोक १०१ । छ ।

पुष्पिकाः मेदपाटे बरग्रामवास्तव्येन अभयीश्रावकपुत्र समुद्धरण श्रावक भार्यायाः कुलपुत्र्या सावितिश्राविकया, धन्यशालिभद्र - कृतपुण्यमहर्षिचरितादि पुस्तिका, स्वश्रेयोनिमित्तं लेखिता । छा संवत् १३०९ ।

२०३/बी, अेकता अेवन्यु,
बेरेज रोड, वासणा, अमदावाद-७
मो. ९९२७२५८२९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्विंशतिजिनस्तोत्रद्वय

सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

जैन साहित्यमां २४ जिनेश्वरसम्बन्धी लघुकृतिओ अंगे तपास करता प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश-मरुगुर्जर वगेरे भाषामां निबद्ध थयेल अनेक रचनाओ जोवा मळे छे. ते रचनाओ चतुर्विंशतिजिनस्तुति-चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र-चतुर्विंशति-जिनस्तव-चतुर्विंशतिजिननमस्कार-स्तोत्रकोश-स्तुतिचतुर्विंशतिका-चतुर्विंशतिका जेवां नामोथी ओळखाय छे.

तेमांनी केटलीक कृतिओ तो वर्द्धमानाक्षरछन्दबद्ध-प्रश्नोत्तरगर्भ-चित्रकाव्यमय-यमकादिअलङ्कारमय-नानाछन्दोमय-वस्तुछन्द-शार्दूलविक्रीडित जेवा मोटा छन्दबद्ध होय छे. वधु करीने (प्रायः) वर्तमान चोवीशीना भगवाननी १-२-३ पद्योनी जोवा मळे छे. केटलीक कृतिओमां तो ५ के ७ पद्योमां ज २४ जिनस्तवना कवि पूर्ण करता होय छे.

स्तोत्रादि साहित्य सिवाय कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य कृत त्रिषीष्टशलाकापुरुषचरित्र, लालर्षि (लोकागच्छीय) कृत महावीरचरित्र जेवा ग्रन्थोमां अने केटलाक विज्ञप्तिपत्रोमां नमस्कारमंगळ स्वरूपे २४ जिनस्तुतिपद्यो जोवा मळे छे. अहीं पण नवप्राप्त २ कृतिओने सम्पादित करी छे.

(१) अज्ञातकर्तृक चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र - २७ श्लोकमां रचायेल संस्कृतभाषाबद्ध कृति. कृतिकारनी कदाच शरूआतनी रचना होई यमक (अन्त्यानुप्रास) मेळवता केटलाक पद्योमां व्याकरण - समास के शब्दप्रयोगमां खामी जणाय छे. श्लोक १०, ११, १२ अने १४ मां तो कविअे छन्दनुं नाम पण समाविष्ट कर्युं छे. हस्तप्रतमां श्लोकना अन्ते छन्दना नाम पछी तेनी अक्षरगणना मुजबना वर्ग (?)नुं नाम पण आप्युं छे. प्रत भावनगर-श्रुतज्ञान प्रचारक सभानी छे. अक्षर सुवाच्य छे. पत्र संख्या १ छे.

(२) दीप्तिविजय कृत चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र - प्रस्तुत कृति १ मंगळ-प्रतिज्ञा पद्य + २४ जिनस्तुति पद्यो + १ प्रशस्ति पद्य अेम कुल २६ श्लोकनी रचना छे. दरेक ज़िनस्तुतिमां कोईने कोई युक्तिपूर्वक परमात्मानुं गुणाधिक्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बताव्युं छे. आ रचनामां पण पूर्वनी पेठे केटलाक मूळपद्यमां - केटलाक अर्थमां शंका रहे छे. पद्य ३-मन्दाक्रान्ता छन्द, पद्य - १६/२३ - ईन्द्रवज्राछन्द, पद्य-२६ शार्दूलविक्रीडित छन्द छोडी शेष सर्वे पद्यो उपजाति-छन्दना छे.

कर्ता तेजविजयजीना शिष्य मानविजयजीना शिष्य दीसिविजयजी छे. तेमणे सं. १७४९ मां आसो सु. १५ ना दिवसे पोताना शिष्य धीरविजयजीनी ईच्छाथी 'मंगळकळश रास' रच्यानी नोंध 'जैन गुर्जर कविओ' भा. ५ मां छे. तेमां तेमणे पोतानी गुरुपरम्परा 'तपा. विजयदानसूरि - राजविमल उपा.-मुनिविजयवाचक-देवविजयवाचक-मानविजयपण्डित (वाचक) एम जणावी छे.

सं. १७४९ मां रचायेल 'कयवन्ना रास' नामक कृति पण जैन गूर्जर कविओ भा. ५ मां तेमना नामे ज नोंधायेल छे. तेमां कर्तानुं नाम 'दीपविजय' छे. गुरुपरम्परा बंने कृतिओ (मंगळकळश रास कयवन्ना रास)मां सरखी छे कदाच 'दीपविजय' ज 'दीसिविजय' तरीके ओळखाता होय अेवुं पण होई शके.

प्रत सुरत-नेमि-विज्ञान-कस्तूरसूरि ज्ञानमन्दिरनी छे. अक्षर सुवाच्य, पत्र संख्या २ छे.

श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम्

॥ ६० ॥ श्री गुरवे नमः ॥

श्रीदेवार्चितं देवं, सेव्यं सज्जनजनौघकैर्नित्यम् ।
कृत्यं किल्विषमुक्तं, नौमि जिनं नाकनाथनतम् ॥१॥ (गाथा॥)
चक्रे चक्रैश्वरीशोऽसौ, सान्तं जन्तोर्जगत्यहो !
तं नाथं **वृषभं** नौमि, यश्चात्यन्तं करिष्यति ॥२॥ (श्लोकः ॥)
जिनेन्द्रचन्द्र ! ते स्तवं, नवं रचन्त्यरं नराः ।
परां रमां लभन्ति ते, मते स्थिताश्च **तेऽजित** ! ॥ (प्रमाणिका-ऽनुष्टुप् ॥)
सम्भवो भवतु मे मुदा, श्रीजिनो विजयदः सदा ।
ये नरा नरप ! ते नता-स्ते त्वहो ! विभवतामिताः ॥४॥ (भद्रिका-बृहती ॥)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तौमि जिनं वक्षःस्थलवत्सं, मार्यपहं **श्रीसंवरवत्सम्** ।
सर्वविदं विश्वेश्वरवीरं, कर्मकलापापातनधीरम् ॥५॥ (रुक्मवती-पङ्क्तिः ॥)
सौमङ्गल्यं शुभमतियुक्तं, वन्दे वन्द्यं कलुषविमुक्तम् ।
स्वर्गिसेव्यं **सुमति**जिनेन्द्रं, विश्वज्ञेयं यतिजनचन्द्रम् ॥६॥ (मत्ता-पङ्क्तिः ॥)
सौरेन्द्रचन्द्रार्चितपादपद्मं(द्य!), पापप्रमुक्ताखिलसौख्यसद्म ।
सौसीम ! ये त्वां प्रणमन्ति भक्त्या, भवन्ति तेऽहःप्रतिराष्ट्रयुक्ताः ॥
(इन्द्रवज्रा-ऽनु(त्रि)ष्टुप् ॥)

पवित्रपादं प्रणमाम्यपापं, प्रभुः कुहेवाककुशास्त्रलापम् ।
प्रतिप्रकृष्टोत्तरदानदक्षः, यस्तस्य **सौपार्श्व**विभोः सुपक्षः ॥८॥
(उपेन्द्रव्रज्रा-ऽनु(त्रि)ष्टुप् ॥)

यो जिनमौनिमुनीश्वरसार अष्टमको हतदुष्टविकारः ।
तीर्थचतुष्कसुसेवितमूर्तिं, नौम्यपवर्गगतं श्रुतकीर्तिम् ॥९॥
(दोधका-ऽनु(त्रि)ष्टुप् ॥)

मौक्तिकमालाविकसितगात्रै-र्नाकनरेन्द्रैर्मुनिमुनिपात्रैः
नौमि नतं तं **नवम**ममोहं, जैनपमेनं प्रतिहतमोहम् ॥१०॥
(मौक्तिकमाला-ऽनु(त्रि)ष्टुप् ॥)

अनेकगुणि(ण)गणमौक्तिकदाम, सदा मदमर्दित ! तर्जितकाम !
जिताखिलकर्मसपत्ननिकाय ! विभो ! **दशमेश** ! ममाऽस्तु सुखाय ॥११॥
(मौक्तिकदाम-जगती ॥)

इह **तोटक**काव्यविदं सततं, **दशमं** जिननायकमेकयुतम् ।
प्रणमामि निरामयमेनमहं, सकलामलकेवलकं मलहम् ॥१२॥
(तोटकं-जगती ॥)

विशदपक्षकृतादरसारकं, विकटकर्मकलापविदारकम् ।
विमलकेवललं **वसुपूज्यकं**, तमुत नौमि च तत्पदपङ्कजम् ॥१३॥
(द्रुतविलम्बितं-जगती ॥)

विमलजिनेनाऽऽगमकरप्रोक्ता(ता), तव गुणमाला कुसुमविचित्रा ।
विलसति माला वररमणीनां, हृदि पुनरेषा श्रम[ण]गुणीनाम् (?) ॥१४॥
(कुसुमविचित्रा-जगती ॥)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तं नतं नाकनाथैरथैनं, जिनं नौम्यहं प्रेमतस्तं सदेनम् ।
अनेकान्तवादाविरुद्धे मते ते, पुनर्नाथ ! जीवन्तु ते ये यतन्ते ॥१५॥
(भुजङ्गप्रयातं-जगती ॥)

यो नरात्रूप(न् य)क्षदेवान् नरेन्द्रान् प्रति,
देशनां दत्तवान् यत्नतः सन्मतिः ।
सोऽक्षरं **धर्मनाथो**ऽव्यथो मे मुदा,
मङ्गलं यच्छतां (दीयतां) निर्मलं सर्वदा ॥१६॥ (स्रग्विणी-जगती)

प्रभोः पुरो भवन्ति वादविह्वला(लाः),
कुवादिनश्च **शान्तिनाथ** ! निष्फलाः ।
यतस्ततो जिनेश ! ये त्वदीयका,
मनीषिणो भवन्ति ते सुसेवकाः ॥१७॥ (वसन्तचामर(रं)-जगती ॥)

ये त्वां सदा जिनपते ! भविनो नमन्ति,
तेऽशेषभावुकभराः सुखिनो भवन्ति ।
तस्माच्च **कुन्थुजिन** ! ते तव सेवकाय,
सौख्यं प्रदेहि परमात्मविचित्रकाय ॥१८॥ (वसन्ततिलका-शर्क(क्व)री ॥)

सुरनररमणीनां वल्लभो यो जिनेशः,
परममुनिगणीनां ज्ञानभादे(दो) दिनेशः ।
मथितमदनदर्पोऽष्टादश(शं) प्रस्तुवेऽहं,
प्रहतकलुषसर्प-स्तं जिनं वीतमोहम् ॥१९॥ (मालिनी-अतिशर्क(क्व)री ॥)

प्रफुल्लपद्मनेत्र-चन्द्रचारुवक्त्र-**कुम्भजं**,
जिनं दिनं दिनं प्रति स्तुवे रवेः समत्वचम् ।
प्रधानमर्त्यपान् प्रबोध्य यो व्रतं समग्रही-
दशेषकर्मचक्रहं च तं त्वहं शमाग्रही ॥२०॥ (पञ्चचामर(म्)-अष्टिः॥)

वन्दे वन्द्यं दमशमधरं सारहीराधरन्तं,
श्रीजैनेन्द्रं सुरनरनतं **सुव्रतं** सत्वमन्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यः सर्वेषां बत तनुभृतां चाऽनुकम्पां विधत्ते,
सो मे दद्यादतुलममलं सौख्यवृन्दं समन्तात् ॥२१॥
(मन्दाक्रान्ता-ऽत्यष्टि (:) ॥)

जिनाधीशं धीशं समरसयुतं सारप्रेक्षं स्तवीमि,
नमिं नित्यं स्तुत्यं पुनरपि कदे नाम पद्मे रमामि ।
अरं भृङ्गोऽहं ते मम मनसि वा ध्यानपूतीकृते वा,
तवाऽधीशाह्वानं रमति सततं चञ्चरीकाकृतिर्वा ॥२२॥
(मेघविस्फूर्जिता-ऽतिधृति(:)॥)

येनेयं कमलाक्षिचन्द्रवदना राजीमती कन्यका,
त्यक्त्वा यादववंशजेन शिशुना राट्पुत्रिका धन्यका ।
वन्द्यः सन् परमां रमां व्रतमयीं जग्राह यश्चा(श्च)र्षिपः,
सो(?)मे **नेमिजिनो** दिनं प्रति सुखं दद्यात् प्रदिव्यकृपः ॥२३॥
(शार्दूलविक्रीडित(म्)-अतिधृतिः ॥)

यश्चैतच्छाठ्यं कमठशठमतेर्निर्दयस्याऽधमा(?)तु(नुः)
प्राग् राज्ये **पार्श्वः** स्वजनजनयुतः स्पष्टयन् दुष्टमुच्चैः ।
सन्द(न्दं)शैर्नागं लकुटपुटगतं विश्वसन्तं समस्तं,
पश्चाच्चारित्रं सकलजनहितं प्रागृहीत् तं स्तवीमि ॥३४॥
(पुष्पदाम(मा)-ऽतिधृति(:) ॥)

श्रीवीरं साधुनाथं सकलसुमतिनः स्तुत्यमाराधयामि,
येनैतत्पापवृन्दं कषमदनभरं निर्जितं तं स्तवीमि ।
नित्यं वैराग्यसारं रविकिरणनिभां भां स्वकाये धरन्तं,
कैवल्यं प्राप्य मुक्तावसृपदमलकं तं त्वहं कीर्तिमन्तम् ॥२५॥
(स्रग्धरा-प्रकृति(:)॥)

इति समक-यमकयुक्तं, व्यक्तं काव्यैर्मनोहरैः स्तोत्रम् ।
जगति चराचरजन्तोः, सुखदं रविचन्द्रवज्जयति ॥२६॥ (आर्या ॥)
जगति च ध्यायन्ति, स्तुत्यान् तच्चेतसो जिनान्ने(ने)तान् ।
सर्वेऽप्युत्कटसुखिनो, भवन्ति वा कीर्तिमन्तस्ते ॥२७॥ (आर्या ॥)

॥ इति चतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपा. दीप्तिविजयप्रणीतं श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम्

॥ ৫০॥ ऐँ नमः ॥

श्रीशारदां सद्वरदां प्रणम्य, नत्वा गुरूणां चरणारविन्दम् ।
स्तवीमि नाभेयजिनेन्द्रमुख्यान्, संसारपाथोनिधिपोततुल्यान् ॥१॥
चेतो दृढं मेऽभिलषत्यजस्रं, त्वद्दर्शनं चन्द्रसुदर्शनीयम् ।
वरेण्यमर्हन्निव वाञ्छितार्थं, नाभेय ! नेतः ! कमनीयकान्ते ! ॥२॥
एषैकस्मिन् तव सुरुचिरा रूपलक्ष्मी(:) त्वयीव,
पौलोमीशेषु न बहुषु सद्धाम ! **मातङ्गलक्ष्म** !
चन्द्रे ज्योत्स्ना जगति हि यका चक्षुरानन्दकारी,
प्रोद्यज्ज्योतिर्जितखग ! न सा वर्तते तारकेषु ॥३॥
श्रीसम्भवास: सुखसम्भवः सः शिवाय नित्यं जगतां त्रयाणाम् ।
यत्पादपद्मेऽङ्कमिषाद्धयेनो-द्यमः कृतः त्यक्तुमिवाशु गौ(गो)त्वम् ॥४॥
सर्वज्ञनामस्मरणाज्जनानां, प्रयान्ति मिथ्यात्वविषाणि नाशम् ।
शाखामृगाङ्काऽधिककायकान्ते, मन्त्रात् पराज्जाङ्गुलिकादिवाऽहेः ॥५॥
सिंहासने हेममये स्थितः सन्, विभ्राजते **श्रीसुमति**र्जिनेन्द्रः ।
शृङ्गे प्रबर्हे स्म यथोदयायो-दयाचलस्यागत उष्णरश्मिः ॥६॥
पद्मप्रभस्तीर्थकरः स भूयात्(द्), मोक्षस्य सौख्याय सतां जनानाम् ।
सहस्रनेत्रोऽपि बभूव वज्री, द्रष्टुं क्षमो यस्य न रूपमासम् ॥७॥
ध्यानं प्रति स्वान्तमलं त्वदीयं, संलीनतां यातितरां मदीयम् ।
सुपार्श्व ! सर्वज्ञ ! नतेन्द्रवृन्दाऽयः प्रत्ययस्कान्त इव प्रकामम् ॥८॥
चन्द्रप्रभश्चन्द्रमरीचिवर्णः, चिरं स जीयाद् भुवि वर्णनीयः ।
प्रकामितं कल्पलतेव दत्ते, भव्याङ्गिनां यः प्रकटप्रभावः ॥९॥
ध्यानेन नश्यन्ति तमांसि नृणां, कृतानि सम्यक् तनुवान(ङ्)मनोभिः ।
शम्भो ! तव **श्रीसुविधीश** ! लोक-नाथोदयेनेव तमांसि भानोः ॥१०॥
शुभ्रत्वमेव सुयशः प्रकटीकरोति, येनेयी(यि)वान् सह विधुर्निबिडं सखी(खि)त्वम् ।
आह्लादकार्ययमतो भृशमेव मन्ये, नेत्रेषु **शीतलविभो** ! जगतां कलङ्की ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्यामि पीयूषमयं भवन्त-मेवं न चेत्(द्) मेऽम्बकयोः कथं स्यात् ?
सुधाञ्जनं शर्मकरं नितान्तं, **श्रेयांस** ! दृष्टे त्वयि सर्वदर्शी(र्शिन् !) ॥१२॥
विलोकय त्वं प्रिय-सौम्यदृष्ट्या, कामं त्वदेकोच्चलवृत्तिमर्हन् ।
कृत्वेत्ययं चेतसि मामकीनः, स्वतर्णकं गौरिव **वासुपूज्य** ! ॥१३॥
मयेहितं यन्मनसि प्रभो ! तत्, त्वद्दर्शनाज्जातमतस्त्वमेव ।
कल्पद्रुमः कामघटश्च चिन्ता-रत्नं जगत्यां **विमल**स्वयम्भूः ॥१४॥
कर्मारयो येन हता(:) क्षणेन, मदोद्धताती(स्ती)क्ष्णमुखैस्तपोस्त्रैः ।
मत्ता महान्तोऽपि कृतापकारा **अनन्त**नाथः स सतां शिवाय ॥१५॥
धर्मेन ! गम्भीरतया त्वयोच्चै-निच्चै(र्नीचै)ष्कृतोऽपां पतिरेव शीघ्रम् ।
नश्यन्ति दृष्टे भवतः कषायाः सूर्यप्रकाशादिव दुष्टचौराः ॥१६॥
शान्तिः स भव्याननवतान्निकृष्टात्, पुत्रान् पिता स्वानिव चारुभक्त्या ।
गर्भस्थिते शान्तिरभूज्जगत्स्व-तो शान्तिनामेति पिता विचक्रे(?) ॥१७॥
वप्रत्रयी सा शुशुभे ददौ सद्-धर्मोपदेशं **जिनकुन्थु**राशु ।
यस्यां दधत्यां कुसुमानि देवैः, क्षिप्तानि जानुप्रमितानि चारु ॥१८॥
त्वमेक एव त्रिजगत्स्वरार्हन् ! (?) कोऽप्यस्ति नाऽन्योद्भुतदृग् विना त्वाम् ।
सिंहो गुहायामिव चित्रभानु-रिवान्तरिक्षेऽसिरिवाऽग्रकोशे ॥१९॥
तत्ते यशो भाति भुवीति पिण्डी-भूयाऽन्वहं यच्चरतीव भोः खे ।
मृगाङ्कदम्भाज्जनं(न)पावनार्थं, **मल्लीश** ! निश्शङ्कतया सनाथम् ॥२०॥
सुराङ्गनानां वचनानिलैस्ते, मनोलता **सुव्रत** ! कम्पिता न ।
अन्यैरसह्यैरिव देव-शैलो मनागपि श्यामलकायकान्ते ! ॥२१॥
ज्ञानं विभाति त्वयि तद्विशुद्धं, मुक्ताफलं हस्त इव स्थितं सत् ।
रज्वात्मको लोक इ ईश ! दृष्ट-श्चतुर्दशो येन **नमे** ! समस्तः ॥२२॥
कुर्यात् स्थिति मे हृदये सदैव, शङ्खाङ्क ! **नेमे** ! प्रकटप्रभाव ! ।
आलम्ब्य यां ति(ती)र्यत आ भवाब्धि-राश्रित्य पोतं जलधिर्यथान्यैः(:)॥२३॥
दृष्टौ रसष्कोऽपि तवाद्भुतः सो-ऽन्येषां न भूतो न भविष्यतीह ।
यथैव माकन्दफले रसो यः, **पार्श्वप्रभो** ! नाऽर्कफले कदाचित् ॥२४॥
श्रीवर्द्धमानो भगवान् विदध्यात्, चिरं स मे हृत्कमलेंऽशुभावम् ।
सच्छर्मभव्यान् भुवि येन नीतं, दत्वोपदेशं रुचिरं शिवस्य ॥२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एते वाचकचक्रवासवसभारामाललाटस्थलो(ले),
भ्राजच्छित्त(त्र)समान**तेजविजय**प्रौढप्रभावोद्भवात् ।
विद्वत्श्रेणी(णि)किरीट**मानविजयां**घ्रीद्वैत(?)पद्मालिना,
दीप्त्याह्वेन जिना(:) स्तुता इति भृशं शिष्येण संसिद्धये ॥२६॥

॥ इति श्रीचतुर्विंशतिजिनं(न)स्तोत्रं समाप्तम् ॥

कल्याणमस्तु

अश्विनभाई एस. संघवी
कायस्थ महोल्लो, गोपीपुरा,
सूरत-३९५००१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री ज्ञानतिलकप्रणीतम्
गवडीपार्श्वनाथद्विस्तोत्रत्रयम्

सं. म. विनयसागर

साहित्य के क्षेत्र में अद्‌भुत छटा बिखेरने वाले उपाध्याय धर्मवर्द्धन (धर्मसी) के शिष्य ज्ञानतिलक भी उत्कृष्ट कोटि के विद्वान थे । ज्ञानतिलक श्रीजिनभद्रसूरि की परम्परा में हुए हैं अतः उनकी गुरु परम्परा का वंशवृक्ष देना आवश्यक है ।

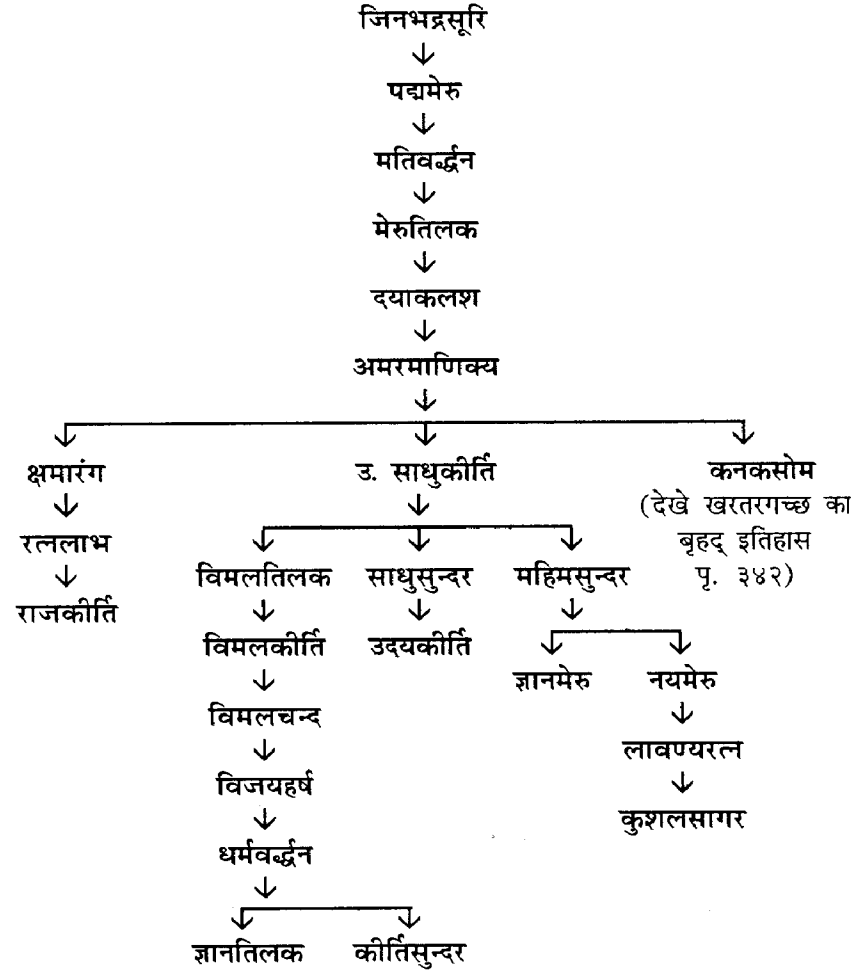

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय धर्मवर्द्धन विजयहर्ष के शिष्य थे । इनका प्रभाव राजा, महाराजाओं पर भी था और जोधपुर नरेश तथा बीकानेर नरेश इनके भक्त थे । इनके द्वारा रचित श्रेणिक चौपाई, अमरसेन वयरसेन चौपाई, सुरसुन्दरी रास इत्यादि प्रमुख कृतियों के साथ ३०० से अधिक लघु रचनाएं भी प्राप्त होती हैं । इन रचनाओं का संग्रह धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली के नाम से विस्तृत प्रस्तावना के साथ पूर्व में प्रकाशित हो चुका है । जिसके सम्पादक अगरचन्द भँवरलाल नाहटा थे ।

ज्ञानतिलक कहाँ के रहने वाले थे, ज्ञात नहीं । किन्तु, इनका जन्मनाम नाथा था और जिनरत्नसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि ने संवत् १७२६ वैशाख वदि ११ चिरकाना में तिलकनन्दी स्थापित की थी । तदनुसार इनका दीक्षा नाम ज्ञानतिलक रखा और विजयहर्ष के पौत्र शिष्य बनाए (दीक्षानन्दी सूची)। सम्भवतः ये राजस्थान प्रदेश के ही होंगे ।

ज्ञानतिलक रचित साहित्य में १. सिद्धान्त चन्द्रिका वृत्ति (अभी तक अप्रकाशित है ।) बिकानेर के ज्ञान भण्डार के अन्तर्गत महिमा भक्ति ज्ञान भण्डार में इसकी प्रति प्राप्त है ।

२. विज्ञप्ति पत्र–यह पत्र जिनसुखसूरि को ज्ञानतिलक ने भेजा था । (इसका प्रकाशन सिंघी जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत विज्ञप्ति लेख संग्रह प्रथम भाग में आचार्य जिनविजयजी ने प्रकाशित किया है । जो पृष्ठ १०७ से ११३ में प्रकाशित है । यह विज्ञप्ति विजयवर्द्धनगणि के नाम से छपी है जो कि ज्ञानतिलक की ही है ।)

३. विज्ञप्ति पत्र–यह अप्रकाशित है और अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में प्राप्त है । इसके अलावा कुछ लघु कृतियाँ भी प्राप्त हैं ।

प्रस्तुत कृतियाँ

इन तीन लघु कृतियों के माध्यम से कवि ने अपना पाण्डित्य भी प्रदर्शित किया है । प्रत्येक कृति में उनका अनूठापन नजर आता है ।

प्रथम कृति गौड़ीपार्श्वनाथ स्तोत्र शृङ्खलाबद्ध है । साथ ही इसकी भाषा संस्कृत है और देशी रागिनी में इसकी रचना की गई है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय कृति सरस्वती स्तोत्र की रचना पद्य १ से ५ मात्रिक सोरठा छन्द में की गई है और पद्य ६ से १४ तक त्रिभंगी छन्द में और १५ वाँ पद्य षट्पदीछन्द में है । त्रिभंगी छन्द का लक्षण - इसमें सात चतुर्मात्रिक होते हैं और अन्त में जगण निषिद्ध है ।

तृतीय कृति दादा जिनकुशलसूरिजी की स्तुति में प्रारम्भ के ५ पद्य आर्या छन्द में रचित हैं, ६ से १३ तक त्रिभंगी छन्द में और १४ वाँ कवित्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

प्रारम्भ के ५ पद्य छोड़कर त्रिभंगी छन्द में निरूपित दादा जिनकुशल-सूरिजी छन्द का पूर्व में कई ग्रन्थो में प्रकाशन हुआ है, उसी के अनुसार मैंने भी दादागुरु भजनावली में उन्हीं का अनुकरण किया है, प्रारम्भ के पाँच पद्य उसमें भी नहीं दिए गए हैं । संस्कृत के कवि भी लोक देशों का आश्रय लेकर और प्राकृत के प्रचलित छन्दों में रचना करने में अपना गौरव समझते थे इस दृष्टि से ये तीनों प्रतियाँ श्रेष्ठ हैं ।

विद्वद्जनो के लिए यह तीनों स्तोत्र प्रस्तुत हैं :-

श्रीज्ञानतिलकप्रणीतम्

गवडीपार्श्वनाथस्तोत्रम्

शाश्वतलक्ष्मीवल्लीदेवं, देवा नतपदकमलं रे ।
मलिनकलुषतुषहरणे वातं, वार्तकरं कृतकुशलं रे ।शा०॥१॥
शलभनिभे कर्मणि दावाग्निं, वाग्निर्जित वद जीवं रे ।
जीवदयापालितसमविश्वं, विश्वसमयरसक्षीबं रे ।शा०॥२॥
क्षीबितगर्वितदुर्जयमोहं, मोहितबहुजनकोकं रे ।
कोकिलकूजितकलरववाचं, वाचा प्रीणितलोकं रे ।शा०॥३॥
लोकितसदसन्नानाभावं, भवभयदर्शितपारं रे ।
परकुमतीनां हतपाखण्डं, खण्डितमारविकारं रे ।शा०॥४॥
कारं कारं विनयं वन्दे, वन्द्यमहं श्रितनागं रे ।
नगसुदृढं श्रीगौडीपार्श्वं पार्श्वेशं जितरागं रे ।शा०॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रागान्निर्मम मम सुनि**कामं, कामं** पूरय **सततं** रे ।
सन्ततमस्तु च तव मे **सेवा, सेवक** विश इति घटतं रे ।शा० ॥६॥

(स्रग्धरावृत्तम्)

इत्थं **गौडीशपार्श्वं** पृथुतरयशसं पार्श्वपार्श्वाख्ययक्षं,
बिभ्राणं **ज्ञान**पूर्वं **तिलक**मतितरां ये जना भक्तिमन्तः ।
सेवन्ते सन्नियुज्य प्रवरकरपुटं मूर्ध्नि संजातहर्षं,
यन्नाम्नः स्रग्धरास्ते प्रतिदिनमचिरात् सातजातं लभन्ते ।

इति श्री गौडीपार्श्वजिनस्तवनम्

◆

सरस्वती-स्तोत्रम्

जय जय वागीशे जये दात्रि ज्ञप्तिं देहि ।
कुरु कुरु कमलासिनि कृपां धाम स्वं सन्धेहि ॥१॥
विश्वं वागुपवेणिता प्रीणयसि त्वं वाणि ।
अधरितसुधामधु ह्यन्तो वीणां किं करवाणि ॥२॥
कालिदासप्रमुखान्पुरा मन्दान्मतिभारेण ।
व्यधिया गुरुतुल्यान्वरे साधितबहुसारेण ॥३॥
तव देवि क्षणतो द्रुतं कीटः करितामेति ।
तस्य न चित्रं किल कृतौ मनसा यदभिप्रैति ॥४॥
श्रुत्वा त्वापि समागमं लघुशिशुकं विज्ञाय ।
भिनु मे कामितसञ्चयं विधिवद्रतिं विधाय ॥५॥

(अथ त्रिभंगीवृत्तम्)

हरिहरधात्राद्या जगदभिवाद्यास्तैरभिवाद्या सुस्मार्या,
जनजनितानन्दा मुखारविन्दा भासितचन्दा हृदि धार्या ।
अद्भुतवागीशा प्रणतदिगीशा श्रितभूमीशा भक्तिभरं,
त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥१॥
जगतीविख्याता जगतां माता शब्दव्राता निष्णाता,
सेवककृतसाता योगीध्याता सदावदाता स्वाम्नाता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्वज्जनसेव्या जनतासेव्या बोधैर्भव्या विगतदरं,
त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥२॥
विकसितकजनेत्रा परिहितनेत्रा पूतक्षेत्राऽभ्यस्तकला,
गतिजितकलहंसा शिरोवतंसा यानितहंसा गुणविमला ।
अमृतद्युतिवदना मौक्तिकरदना धृतधीसदना सुखनिकरं,
त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥३॥
कलकण्ठीकण्ठा गेयोत्कण्ठा सुन्दरकण्ठा प्रियतालैः,
सङ्गीतविभेदा वेदितवेदा खेदितखेदाऽङ्गुलिचालैः ।
स्वररसझरवाहाऽतिशयवगाहा यदुपाविणयदुदितकरं, (?)
त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥४॥
प्रतिवर्णविकल्पाः स्वरविधिकल्पाः कल्पाकरविस्पष्टा,
जातिव्यक्तिभ्यां सद्युक्तिभ्यामस्तस्फोटिभुवि शिष्टा(?) ।
यद्यानादिस्थं सर्वं सुस्थं व्यक्तीचक्रे परमपरं,
त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥५॥
जाड्याम्बुधिमग्ना-लाकृतिभुग्ना स्नेहाभुग्ना जननिचया,
अज्ञानतमोन्धा यथा दिवान्धा लसदमृताम्भा विधिनिचया ।
सर्वांस्तान् क्षणतः सद्वीक्षणतस्सल्लक्षणतस्चित्सुवरं ।
त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥६॥
सत्पुस्तकहस्ता चेतःशस्ता बुद्धिनिरस्ता बुधताया,
वाग्भङ्गीतरङ्गा निर्जितगङ्गा सत्कतरङ्गा सच्छाया ।
उपनिषदादाना वरं ददाना तत्त्वनिदाना मुत्प्रकरं,
त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥७॥
सारस्वतरूपा ज्योतीरूपा भास्वद्रूपा नित्यस्था,
देवेन्द्रैर्नूता शुद्धाकूता विद्यापूता मध्यस्था ।
ओङ्कारोदारा चेष्टेस्फारा ज्ञानद्वारा घनरुचिरं,
त्वं कुरु गीर्वाणी श्रेयस्कारिणी दुःखनिवारिणी बुद्धिवरम् ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(षट्पदकवित्वम्)
विदिता कल्पलतेव सिद्धिवृद्धेः पूरणतः,
क्षोणिजनतायाश्च देव्यसि त्वां मे भणतः ।
शुभवति शुभभावेन नयनप्राघुणकीकृत्यं,
वितर वितर मे मुहु तत्त्वरायं संस्कृत्य ।
विजयादिहर्षमुत्कर्षतः **सविजयवर्द्धनकं** सदा ।
सद्ज्ञानतिलकदायं ततं ज्ञत्व सौख्यकरण मुदा ॥९॥

इति सरस्वती स्तोत्रं

◆

पितामह - श्रीजिनकुशलसूरिछन्दः

(आर्याच्छन्दः)
जिनकुशलं सूरीशं रत्नत्रयप्रभृतिरत्नवारीशम् ।
गायामि मुनिगणेशं वागनवद्यैः शुभं पद्यम् ॥१॥
पञ्चे पंचमअरके विषमे घनतापकारके तप्तान् ।
सुरतरुरिव यो जीवान् सुखयति सच्छायमधिकददः ॥२॥
यत्कीर्तिप्रस्फूर्त्या विचित्रमपि चित्रितं हि भुवनतलम्,
विशदमिव भाति सर्वं तं सततं कीर्तयामि हितार्थम् ॥३॥
योऽरण्येषूदन्यत यः चापः पाययत्यहो अभिकान् ।
असमयजातघनौघं विकुर्व्य विद्युत्सनितमिश्रम् ॥४॥
धनी धनीरपि मनुजः सुतीरपि स्यात् सुती परमभक्तः,
सुखी सुखीरपि नित्यं भवतः शुभदृष्टिसृष्टिचयात् ॥५॥

(त्रिभंगीछन्दः)
यो भूमीषष्ठे पृथुलवरिष्ठे गाढगरिष्ठे भातितरां,
यः कृच्छ्रं कक्षं मौर्व्याध्यक्षं सर्वसमक्षं दातितराम् ।
कुर्वन्निरपायं सौख्यन्तरायं छेदितमायं बुद्धिगुरुं,
तं वारंवारं सेवे स्फारं सच्छ्रीकारं कुशलगुरुम् ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यं दर्पकरूपा मधुरसकूपाः शश्वद् भूपाः सेवन्ते,
यं नामं नामं सदा प्रकामं पूरितकामं देवं ते ।
भास्वद्वेषा सुषमारेखा दृप्यल्लेखा विश्वगुरुं,
तं वारम्वारं सेवे स्फारं सच्छ्रीकारं कुशलगुरुम् ॥२॥
येन च घनदावं प्रज्वलदावं संभृतभावं पुरं कृतं,
यन्निशितं शस्त्रं मृदुशतपत्रं पत्त्रीपत्रं विषममृतम् ।
धरणीगमनानां त्वद्ध्यानानान्तरमानानां साधुगुरुं,
तं वारम्वारं सेवे स्फारं सच्छ्रीकारं कुशलगुरुम् ॥३॥
यस्मै भूहरये दीप्त्या हरये भयगजहरये भवतु नमः,
कामितफलकर्त्रे दमरविहर्त्रे जगतो भर्त्रे पुनर्नमः ।
श्रीकरणप्रभवे मुनिताप्रभवे विभुताविभवे सफलतरुं,
तं वारम्वारं सेवे स्फारं सच्छ्रीकारं कुशलगुरुम् ॥४॥
यस्माद् गुरुनाम्नो बहुगुणधाम्नस्तव गुणदाम्नो नुः परमा-
न्त्रेशुः सपायाः सदान्तराया दुःखनिकाया गतभ्रमात् ।
स भवति श्रेयो यस्माच्छ्रेयो बहुलप्रेयो धर्मगुरुं,
तं वारम्वारं सेवे स्फारं सच्छ्रीकारं कुशलगुरुम् ॥५॥
यस्य श्रीस्तूपाः पूता यूपा इव सद्रूपा भुवनतले,
सत्केतूत्तुंगा लसत्सुरंगा नानाभंगा सन्त्यखिले ।
चन्दनघनसाराद्याश्रितसारा गन्धोदाराः शान्तगुरुं,
तं वारम्वारं सेवे स्फारं सच्छ्रीकारं कुशलगुरुम् ॥६॥
यस्मिन् मार्त्तण्डे तेजश्चण्डे भारतखण्डे सामुदिते,
तम इव न व्याधि क्वेव दुराधिः स्वान्तसमाधिः स्यात् प्रीते ।
न च बन्दी रोगा न च दुर्योगा भासुरभोगा भूमितरुं,
तं वारम्वारं सेवे स्फारं सच्छ्रीकारं कुशलगुरुम् ॥७॥
करुणारससागर ! नूतननागर ! जनकृतजागर ! शुभशालिन् !,
देवेष्टं पूरय दुःखं दूरय शत्रूंश्चूरय मुनिमालिन् !।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्त्या भक्तानां त्वत्सक्तानां त्वद्रक्तानां सुखितमरुं,
तं वारम्वारं सेवे स्फारं सच्छ्रीकारं कुशलगुरुम् ॥८॥

(कवित्वम्)

विघ्नद्रुमगजराज ! रुचिरविरुदानां धारय,
कलियुगसुरघटतुल्य ! विपुलविद्यानां पारय ।
विजयहर्षभृतां नृणां **विजयवर्द्धन**सत्करां,
विदधच्चरितदेवं धरणितलजीवाधाराम् ॥
जिनचन्द्रसूरिपट्टे स्थितस्तावद् विजयस्व द्रुतम् ।
यावत् सुराद्रिसूरौ त्वकं '**ज्ञानतिलक**' दो विश्रुतम् ॥९॥[१]

C/o. प्राकृत भारती,
13-A, मेन मालवीय नगर
जयपुर ३०२०१७

१. ये रचनाएं काफी अशुद्ध लगती है । यदि सम्पादकजीने शुद्ध वाचना के लिए प्रत्यन्तरोंसे मिलान इत्यादि रूप प्रयत्न किया होता तो काफी आनन्द होता ।
- **शी.**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविधकविकृत त्रण गेय रचनाओ

सं. साध्वी समयप्रज्ञाश्री

मने आपवामां आवेला छूटक प्राचीन पानांओ परथी ऊतारेली त्रण गेय रचनाओ अत्रे प्रगट थाय छे. अर्थ समजाता न होय त्यारे नकल करवामां मथामण घणी थाय छे, पण मजा पण घणी पडे छे.

प्रायः अढारमा सैकामां लखायेला एक पानांमां ज आ त्रण रचनाओ छे. तेमां पहेली रचना ''सुमति-कुमतिवादगीत'' 'चेतन' (आत्मा)नो अने तेनी बे पत्नीओ-सुमति अने कुमतिना वादने वर्णवे छे. बन्ने प्रियतमाओ पोताना स्वामीने पोताना तरफ आववा समजावे छे. भाषा बहु कठिन लागी छे एथी पंक्ति अने पदोनो छेद करवामां भूल थई होय तो ते माटे क्षमा याचुं छुं. विद्वान जनो आ रचना उपर विवरण करशे त्यारे घणुं जाणवा मलशे. तेना कर्तानुं नाम छेल्ली पंक्तिमां ''लाल विनोदी'' एवा शब्द ऊपरथी ''लालविजयजी'' नामे मुनिराज होवानुं लाग्युं छे. परंतु 'ज'कार साथे कहेवा जेटली मारी सज्जता नथी. जाणकारो ते नक्की करे.

बीजी रचना 'सील सज्झाय' नामे छे, ते विजयदेवसूरि महाराजे बनावेल छे. तेमां शीयलनी नव वाडोनुं स्वरूप वर्णवेल छे. पूज्योना कहेवाथी जाणी शकायुं छे के सत्तर-अढारमा सैकामां थयेल देवसूरसंघना पूज्य विजयदेवसूरि महाराजे आ सज्झाय बनावी होय तेवुं लागे छे.

त्रीजी रचना 'सील चूनडी' नामनी छे. तेमां 'शील' व्रतने चुनडी एटले के चुंदडी तरीके वर्णवेल छे. तेना ताणा-वाणा वगेरे, तेनो रंग, तेमां गुंथेला चांदरणां-चन्द्रक, तेमां चीतरेलां सिंह, हंस, मोर वगेरेनां सुशोभनो इत्यादिनुं मस्त वर्णन पहेली पांच कडीओमां करेल छे. सद्गुरुए वणेल आ चुंदडी अणमोल छे तेवुं कहीने तेनां मूल कोण आंके तथा तेनो उपभोग (बलभोग) कोण करे तेवो प्रश्न ऊभो करेल छे. तेना प्रत्युत्तरमां अे चुनडी पहेलां नेमिनाथे, पछी गजसुकुमाले तेमज पछी क्रमे क्रमे सुदर्शन शेठे, जम्बूस्वामीए तथा सीता, कुन्ता, द्रौपदी वगेरे महासतीओए ओढी-उपभोगी छे तेवुं वर्णन छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आना रचयिता हीरमुनि छे.

आमां भूलचूक होय ते सुधारी लेशो तेवी विनंति करुं छुं.

सुमति - कुमति वादगीत

॥ राग - सारंग ॥

चेतन छांडो हो यह रीति,
जैसै दोइ नावको चढिवो त्यौ दोई त्रिय की प्रीति
चेतन छांडि हो यह रीति ॥टेका॥

कुमति सुमति तेरें द्वे बनिता द्वैसो प्रीति बढावै,
भए हौ पात वथूरा (?) । तुम चित्त कहैं तौ आवै;
कबहुंकि तल कबहुंकि ऊपरि, चिहुंगति तोहि फिरावै,
कुमति नारि तैरै हो खोटी ले दुरगति पुहचावै चै० ॥१॥
आठ बंध याकैं संग डोलै, लीयै पांच सर गासी,
तुम तो उनिको हैते करि जांनत, वे दैहैं तोहि फासी;
सावधान तुम होत नांहि नां, बुध तमारी नासी,
मेरे कह्यो मांन ले चेतन, अंत होइगी हांसी. चे० ॥२॥

कुमति कहैं पिय सुमति नारिसुं, प्रीति कियैं पा छितेहौ
छुटैगो घरबारु अबै परिवार विना के ह्वैं भीखमंगै है चे० ॥३॥

सुमति कहैं सुनि नाह बावरै, यह धन धर्म चुरावै,
दर्शन ज्ञान चारित्र रत्न शुभै तिनकौं अंक लगावै,
तेरो हितु धर्म दश जगमैं सो नहि आवन पावै,
मेटै सकल रीति जिन भाषि तो उलटी चाल चलावै. चे० ॥४॥

कुमति कहै सुनि कंत पियारे, यह तोकुं फुसिलावै,
यह दूती चंचल शिवपुरकि, ते फंद यहि आवै,
हुं सुद्धि अपनै घर बैठी, ताकौं अंक लगावै,
तौं सुं कंत पायकैं भौंदू क्यौं नही नाच नवा(चा)वै. चे० ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमति कहैं याकौ सु धाषनु, समझि परैगी यौकी,
यह देहैं डारि जेल मनमथकी, यह है अपनी गोंकी;
अपनौं कियौं आपही पय हौ, हूं काहैं कौं रोकौं,
तबहीं समुझि परैंगी चैतन जब छांडौगे मोकौं. चे० ॥६॥

पिय याकै डर पायैं तुम मति डरपो(यो?) तुम सिर छत्र फिराउं,
या तै रूप अधिक की विनता ते तुमकौं आंनि मिलाउं,
बिलीसौ भौग संक मति मानौ, हौं तुमकौं समुझायुं,
आपौ राज तौहिहि मंडलकुं, तो हूं कुमति कहाउं, चे० ॥७॥

या कुजात केते घर घाले, या पैं कौं इन वंच्यौ,
ब्रह्माकै जुं पांच मुख कीनां, शिव त्रिया आगै नांच्यौ,
हरिहरादिक रावण बालि कीच याहाके रंग राचे
या तें हो डर पति हो चेतन तुम हौ जिय के काचे चे० ॥८॥

इन सुजाति काकौं घर राख्यो, जैन पुराण मैं गाए,
श्री ऋषभ आदि चोवीस एते लै गिरिशिखिर चढाए,
पाष मास दै रुखौ भोजुन, ह्वै कर केश लुचाए,
काया गारि दीए शिवपुर मैं वैहुं रिन कलिमैं आए. चे० ॥९॥

जे चेतन जग भटक्यौ चाहो, तो य सीख सुनिजै,
नही तो दुविधा पद मेटो, प्रीति एकसौ कीजै;
जाकी प्रीति परमपद उपजै दुख-जल जल दीजै,
आवागमन मेटि त्रिभुवनकौं शिवकै सुख लीजै. चे० ॥१०॥

जब चेतन समुझे कुछ मनमैं, प्रीति सुमतिसौ ठानी,
यहं कुजाति दुरमति बेढंगी, नीं के करिकै जब जांनि,
दई निकारि कुमति घरि सेती, करीय सुमति पटराणी,
सुनहु भविक जिन **लाल विनोदी** गावै. च चे० ॥११॥

इति सुमति-कुमति वादगीतम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सील सज्झाय लिख्यते

तुम सुणज्यौ हो ब्रह्मचारी, धरवी रे नववाड सुंगाकि
रमणी पसु पंडत(क) तणी रे, वसति निवासो सोइ ।
मंजारी घर आवतां, मुसा रे, किम पर सुख होइ... ॥१॥ तुम...

नींबु-फलकी वातडी रे, चल्ले दांन(त)थी नीर;
तिम नारी गुण गावतां, तन भेदे रे मद घन तीर... ॥२॥ तुम...

अंग उपंग नवि न(?) नीरखीये रे, इम जाणे ब्रह्मचारी;
रवि सांमो मुख जोवतां, नैणा रे नही तेज लगाई... ॥३॥ तुम...

अबला आमण फरसतां रे, संभू सुणो विपाक;
चीभड फल वासै करी, जिम डूडै रे आटारी वाक... ॥४॥ तुम...

पांच भीतकै आंतरै रे, नारी सबद सींणगार;
सुणतां व्रत थीर ना रहै, घन गरजत रे जिम मोर पिंगार.. ॥५॥ तुम...

पूरब भोग संभालतां रे, थायै अनरथमूल;
जिम(न) रक्ष तणी परि जाणिज्यो, रयणा रे पोयो त्रिशूल..॥६॥ तुम...

वैद्य निवारण उपरे रै, म म ल्यो सरस आहार;
जिम राय अंब-भक्षण करी, जाय पहुचावे यमद्वार... ॥७॥ तुम...

अतिमात्रा आहारसुं रे, थायै व्र[त]को भंग;
मुनि कुंडरीक तणी परि जाणज्यो, जाय पहुता रे सातमी नर्क ॥८॥ तुम...

खंत करी रस सेवीयै रे, कामणी कामविलास;
तरवर फल स्वादे करी, जिम पंक्षी डोरे करै विनास... ॥९॥ तुम...

इ नव वाडि न भंजीये रे, आणी समरस पूर;
सिद्धवधू ही लै वरौ, इम बोलै रे **श्री विजै देवसूरि**... ॥१०॥ तुम...

इति नववाड सिल सज्झाय संपूर्णम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सील चूनडी

हेजी सील सुरंगडी, अर जै ओढने नरनारिजी;
इणभव परभव सुख लहै, धन तेहनो अवतारोजी..... सी० १

हेजी ताणो न(व)ण्यौ तीन गुपतीकौ, अर वाण्यो ववेकोजी;
नलीय भरी नव वाड की, क्षीमा खूंटी ताणोजी..... सी० २

हेजी पास दीयो पांच सुमतीकौ, अर रंग लागो वैरागोजी;
पंचवरण पंचमहाव्रतको, कारीगर करणी अथाहोजी..... सी० ३

हेजी चारित्र चांदा विचि लिख्या, अर वेलि विलय छि लहाणोजी;
मूल उत्तरगुण घूघरु, सीह हंस मोर जिण आणोजी..... सी० ४

हेजी जेह वणी सदगुरुतणी, अर कहि सखी के ना मोलोजी;
लाखे ही लाभै नही, अर नही तसु तोलोजी..... सी० ५

हेजी कोन मोलावै चुनडी, अर को करी बलभोगोजी;
नेमजी मुलावे चुनडी, राणी राजुलनै बलभोगोजी..... सी० ६

हेजी पहिली ओढी श्री नेमजीनै, अर दुजा गजसुकमालोजी;
तीजी सेठ सुदरसनै, चौथा जंबुकुमारोजी..... सी० ७

हेजी सीता कुंता द्रौपदी, अर चोथी चंदनबालाजी;
गौरी नै पद्मावती, रूपिला राजुलनारीजी..... सी० ८

हेजी ब्राह्मी सुंदरी अति भली, अर मृगावति अभिरामोजी;
सुलसा सुभद्रा ने सिवा, दवदंती अभिरामो (जी).... सी० ९

हैजी चूला कलावती नैर पभावती, अर मंदोदरी महाधीरोजी;
ए सीलवंत नर-नारिना, गुण कह्या अनंत महावीरोजी... सी० १०

हेजी अजब विराजै चुदडी, अर सोहै सीलज तारोजी;
हीरमुनीसर हरखसुं, धन तेहनो अवतारोजी... सी० ११

इति सील चुंदडी संपूर्णम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्पमालाचिंतवणी

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

घणा वखत अगाऊ खंभातना भण्डारमां आ नामे प्रति नजरे चडतां, मनोविनोद खातर तेनी नकल ऊतारेली. ते हमणां अचानक हाथमां आवतां, जेमनी तेम अत्रे रजू थाय छे.

विविध ३१ जातनां पुष्पोनां नामो साथे उल्लासप्रेरक वर्णन करतां ३१ दोहरानी आ कृति छे. दुहा गुर्जरभाषामां होवाथी स्वयंस्पष्ट छे, रसिक जनोने रसोत्सव थाय तेवी छे आ लघुकृति.

प्रायः २ पानांनी प्रतिमां प्रारम्भे अहीं आप्यां छे ते ५ कोष्टको छे, ते अत्रे यथावत् आपवामां आव्यां छे. लोगे छे के ते कोई बाल-क्रीडा अर्थात् रमत माटे हशे. ते पांचे कोष्टकना मथाळे आपेल १, २, ४, ८, १६ ए आंकडाओनो सरवाळो ३१ थाय छे, जे ३१ दुहामां वर्णवेल ३१ पुष्पोनो संकेत करे छे.

आना कर्ता कोण-ते विषे कशी सूचना मळती नथी. पुष्पिकामां जे जैन साधुनुं नाम छे, तेनी आ रचेली चीज होई शके ? अलबत्त, आ एक अटकळ मात्र छे.

१

चांपो	मोगरो	कंदली	धतूरो
पान	केसू	कमोदनी	सुदरसणो
पाडल	सेवत्री	करणी	हारसणगार
अंवकेस	तडतडी	करीर	बउलसिरी

४

चंवेली	केतकी	कंदली	धतुरो
कमल	कमोदनी	कंद	सुदरसणो
कणियर	करणी	सिरषंडी	हारसणगार
आफु	बोलसरी	सहकार	करीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२

गुलाब	मोगरो	केतकी	धतूरो
पाईण	केसु	कंद	सुदरसणो
सदावतंस	सेवत्री	सिरषंडी	हारसिणगार
केवडो	तडतडी	सहकार	करीर

८

जूई	पान	पोईण	केसु
कमल	कमोदनी	कंद	सुदरसण
सुरजनो	अंवकेस	केवडो	तडतडी
आफु	बोलसरी	सहकार	करीर

१६

जूई	पान	पोईण	केसु
कमल	कमोदनी	कंद	सुदरसण
सुरजनो	अंवकेस	केवडो	तडतडी
आफु	बोलसरी	सहकार	करीर

(पुष्पमाला चिंतवणी)

जेहने उपमा देत है कवि कामिनीनें अंग ।
अदभूत सरस सुगंधता **चंपा** फूल सुरंग ॥१॥
ज्यु निरमल कुल कामनी शीलसुगंधसुवास ।
पुजे तिम बहु पाईये फूल **गुलाब** सुवास ॥२॥
सज्जनकेरी प्रीतडी दिन दिन अधकी थाय ।
मोगर केरा फूल जिम परिमल कह्यो न जाय ॥३॥
तीलसरीसा गुण पलकमै दाषै जेह अमूल ।
ते सजन कीम वीसरै जिम **चंवेली** फूल ॥४॥
कदली गरम सकोमली जेहनी अदभूत देह ।
ते सज्जन सषी संभरें जिम बप्पीआ मेह ॥५॥
सुंदररूप सुरंगपणि जेह सकंटक होय ।
ते दूरि सषी परिहरी **केतकी** ईसर जोय ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेहनो मन जिहां मानयो तेहने तेह अमूल ।
निंद्यकरूप **धत्तूरमुं** ईसर पणि अणुकूल ॥७॥
मेहघटा देषी करी विरहणी व्याकुल चित्त ।
कंत संदेसाथी थई जिम **जूई** मयमंत्त ॥८॥
हे सषी आमणदुमणी कहीये तेह निदान ।
ते सज्जन सषी हल्लीया बे मुष देता **पान** ॥९॥
ते सज्जन कीम वीसरे जेह हसै ससनेह ।
सुंदररूप सरूपता **पोईण** सम वर देह ॥१०॥
रे सज्जन आस्या घणी ते बंधावी आम ।
अवसर **केसु** फूल जिम मुष नवि करीयें स्याम ॥११॥
कुण नगरे कुण पट्टणै ते सज्जन निवसंत ।
जे देषी सषी आपणो रिदय**कमल** विकसंत ॥१२॥
सज्जनके मीलाय थे रोम रोम होय आणंद ।
तनमै परिमल विस्तरे जैसे **कुमुदनी** चंद ॥१३॥
दिन दिन उठी हे सषी नमियें उत्तम जात ।
ते सज्जन बहुगुण भर्या **कुंद**पूप्फ अवदात ॥१४॥
सुदरसण कुसम ग्रही, जब आयो निज कंत ।
तरुणी ततषीण दोडती आय मीली एकंत ॥१५॥
प्रीत पराणैं जे करें ते नर नीगुण गमार ।
मालतीके मनमें नही मधूकर करत पुकार ॥१६॥
पीऊ **पाडल**फूल जिम तुम दरसण मुझ नाथ ।
अतिवल्लभ आठे पहोर नवि मुकुं तुझ साथ ॥१७॥
पीऊ पुछे सुणि कामिनी कुण तुझ वल्लभ फूल ।
कहै विचक्षण कामिनी **सदावसंत** (**वतंस**) अमूल ॥१८॥
सज्जन साचो मुझ कहै क्युं ते गुण लहियां ।
सेवंत्रीना फूल जिम घर घर महमहियां ॥१९॥
गुणहीण गरवे भर्या दीसै दुरि अमूल ।
जे सज्जन स्युं कीजीयें जिम **कणियर**ना फूल ॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते सज्जन नवि वीसरें जे सहजें ससनेही ।
ताप समें **करणी** परें जे सहजें नवनेह ॥२१॥
दुर देशा(शां)तर सज्जने ते नवि मुकै चित्त ।
जे अवसरी आगल धरें **सिरषंडी** मयमत्त ॥२२॥
हारसिंणगार सोहामणो देषी कामिनी कंत ।
कुण कारण प्राणेशजी नवि मिलीया एकंत ॥२३॥
वर वेस्या वित्तचारणी देषी थयो ज शोक ।
सुरजन केरा फूल जिम हावभाव थयो फोक ॥२४॥
निफल तुझ मुझ प्रीतडी उत्तम अतहि अमूल ।
सज्जन संगम फल विना जिम **अंबकेसी** फूल ॥२५॥
कंटक पणि जे गुणभर्या ते आदरमान लहंति ।
जिम कलीकालै **केवडो** उत्तम मोल चढंति ॥२६॥
दुरि थकी रलीआमणा नही अंतरगुण संग ।
तडतडियाना फूल जिम तिणसुं कहो कुण रंग ॥२७॥
सुंदर रूप सोहामणो जे अंतर विषवेल ।
मोटा **आफु** फूल जिम ते देसांतर मेल ॥२८॥
लघु पणि जे बहु गुण भर्या अंतर सरस सुगंध ।
बोलसरीना फूल जिम उत्तमसुं संबंध ॥२९॥
कोडिकुमदिनी जाति छै न सहकार समान ।
जे भक्षणथी कोकिला - कंठ लहै उपमान ॥३०॥
वहि आडंबर बहु कीयो नही अंतर गुणलेस ।
करीर केरा कुसम जिम ते सूं कवण मिलेस ॥३१॥

इति पुष्पमाला चिंतवणी संपूर्ण ॥

लिखतं पूज्य ऋषि श्री ५ अमराजी तत्सिष्य लिखतं ऋ श्री ५ सांमलजी वै. तिकमपठनार्थं संवत् १७५६ वर्षे आसु शुदि १० शनै । मालवादेशे रिणोजीमध्ये शुभं भवतु ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्धमागधी आगम साहित्य में श्रुतदेवी सरस्वती

प्रो. सागरमल जैन

जैन धर्म आध्यात्मप्रधान, निवृत्तिपरक एवं संन्यासमार्गी धर्म है। इस धर्म के आराध्य अर्हत् रहे हैं। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों और विशेष रूप से अर्धमागधी आगम साहित्य में हमें साधना की दृष्टि से अर्हतों की उपासना के ही निर्देश मिलते हैं। यद्यपि अर्धमागधी आगम साहित्य में कहीं-कहीं यक्षों के निर्देश हैं, किन्तु श्रमण परम्परा के मुनियों द्वारा उनकी आराधना और उपासना करने के कहीं कोई निर्देश नहीं है। यद्यपि कुछ प्रसंगों में अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए गृहस्थों के द्वारा इन यक्षों की पूजा के कुछ निर्देश अवश्य मिलते हैं, फिर भी यह जैन साधना का अंग रहा हो, ऐसा कोई भी निर्देश हमें प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि कालान्तर में जैन धार्मिक अनुष्ठानों में इनकी आराधना या पूजा के निर्देश अवश्य प्राप्त होते हैं, सर्वप्रथम मथुरा के एक जैन आयागपट्ट (प्रायः ईसा की दूसरी शती) पर एक देवी प्रतिमा का अंकन है। उसके सान्निध्य में एक जैन श्रमण खड़ा है और पास ही कुछ उपासक एवं उपासिकाएँ भी हाथ जोड़े खड़े हैं, किन्तु यह देवी कौन है ? इसका निर्णय नहीं हो सका। अभिलेख में इसका नाम आर्यावती है, किन्तु कुछ विद्वानों ने इसे तीर्थंकर माता भी कहा है (देखे चित्र १)। अर्धमागधी आगम साहित्य में सर्वप्रथम महाविद्याओं का उल्लेख है, किन्तु चौबीस शासनदेवता या यक्षियों के निर्देश परवर्ती जैन ग्रन्थों में ही उपलब्ध हुए हैं, किन्तु अर्धमागधी आगम, उनकी निर्युक्ति और भाष्य भी इस सम्बन्ध में मौन हैं। यह सब परवर्ती कालीन अर्थात् ईसा की सातवी शती के बाद ही है।

प्राचीन स्तर के जैन ग्रन्थ सूत्रकृतांग (२/२/१८) एवं ऋषिभाषित में विद्याओं के उल्लेख तो अवश्य हैं, किन्तु वहाँ वे मात्र विशिष्ट प्रकार की ज्ञानात्मक या क्रियात्मक योग्यताएँ, क्षमताएँ या शक्तियाँ ही हैं, जिनमें भाषाज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से लेकर अन्तर्ध्यान होने तक की कलाएँ हैं, किन्तु कालान्तर में तान्त्रिक प्रभाव के कारण जैनों में सोलह विद्यादेवियों, चौबीस यक्ष-यक्षियों, चौबीस कामदेवों, नव नारदों और ग्यारह रुद्रों, अष्ट या नौ दिक्पाल, लोकान्तिक देवों, नवग्रह, क्षेत्रपाल, चौंसठ इन्द्रों और चौंसठ योगनियों की कल्पना भी आई, किन्तु उपरोक्त जैन देवमण्डल में भी सरस्वती का उल्लेख नहीं है। जैन धर्म में प्रारम्भ में जो सोलह महाविद्याएं मानी गई थीं, वे भी कालान्तर में चौबीस में सम्मिलित कर ली गई और यह मान लिया गया कि चौबीस तीर्थंकरों के शासन-रक्षक चौबीस यक्ष और चौबीस यक्षणियाँ होती हैं, लेकिन आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि चौबीस शासन देवता या यक्षियों में भी कहीं भी सरस्वती एवं लक्ष्मी का उल्लेख नहीं है। यद्यपि प्राचीन काल से ही जैनों में ये दोनों देवियाँ प्रमुख रही हैं, क्योंकि सर्वप्रथम तीर्थंकरों की माताओं के सोलह या चौदह स्वप्नों में चौथे स्वप्न के रूप में श्री देवी या लक्ष्मी का उल्लेख मिलता है। मात्र इतना ही नहीं, उसके मूलपाठ में एवं उसकी परवर्ती टीकाओं में उसके स्वरूप का विस्तृत विवरण भी है। यद्यपि यहाँ उसकी उपासना विधि की कहीं कोई चर्चा नहीं है। जहाँ तक सरस्वती का प्रश्न है, अर्धमागधी आगम साहित्य में भगवतीसूत्र के पन्द्रहवें शतक के प्रारम्भ में **''नमो सुयदेवयाए भगवइए''** के रूप में श्रुतदेवी सरस्वती को नमस्कार करने का उल्लेख है। इसी प्रकार भगवतीसूत्र के आद्य मंगल में यद्यपि **'नमो बंभीए लिवीए'** कहकर ब्राह्मी लिपि को और **'नमो सुयस्स'** कहकर श्रुत को नमस्कार किया गया है, किन्तु वहाँ श्रुतदेवता का उल्लेख नहीं है। भगवतीसूत्र के आद्य मंगल एवं पन्द्रहवें शतक के प्रारम्भ में मध्यमंगल के रूप में, जो श्रुत या श्रुतदेवता (सरस्वती) का उल्लेख है, उसे विद्वानों ने परवर्ती प्रक्षेप माना है, क्योंकि भगवतीसूत्र की वृत्ति में उसकी वृत्ति (टीका) नहीं है। भगवतीसूत्र का वर्तमान में उपलब्ध पाठ वल्लभी वाचना में ही सुनिश्चित हुआ है। यद्यपि भगवतीसूत्र के मूलपाठ में अनेक अंश प्राचीन स्तर के हैं, ऐसा भी विद्वानों ने माना, किन्तु वल्लभीवाचना के समय उसके पाठ में परिवर्तन, प्रक्षेप और विलोपन भी हुए हैं। अतः यह कहना कठिन है, कि भगवतीसूत्र में आद्यमंगल एवं मध्यमंगल के रूप में जो श्रुत या श्रुतदेवता को नमस्कार किया है वह प्राचीन ही होगा। भगवतीसूत्र के प्रारम्भ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आद्यमंगल के रूप में पंचपरमेष्ठि के पश्चात् **'नमो बंभीए लिवीए'** और **'नमो सुयस्स'** ये पाठ मिलते हैं । यहाँ ब्राह्मी लिपि और श्रुत को नमस्कार है, किन्तु श्रुतदेवता को नहीं है । अतः श्रुतदेवता की कल्पना कुछ परवर्ती है । संभवतः हिन्दू देवी सरस्वती की कल्पना के बाद ही सर्वप्रथम जैनों ने श्रुतदेवता के रूप में सरस्वती को मान्यता दी होगी ।

यद्यपि मथुरा से मिले पुरातात्त्विक साक्ष्य इसके विपरीत है, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि विश्व में सरस्वती की कोई सबसे प्राचीन प्रतिमा है तो वह जैन सरस्वती ही है (देखे - चित्र २) । वर्तमान में उपलब्ध सरस्वती की यह प्रतिमा मस्तकविहीन होकर भी हाथ में पुस्तक धारण किए हुए हैं एवं ब्राह्मी लिपि के अभिलेख में 'सरस्वती' के उल्लेख से युक्त है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में जैन परम्परा में श्रुतदेवी या सरस्वती की उपासना प्रारम्भ हो गई थी । मथुरा से प्राप्त इस सरस्वती की प्रतिमा में सरस्वती को द्विभुजी के रूप में ही अंकित किया गया है, किन्तु उसके एक हाथ में पुस्तक होने से यह भी स्पष्ट है कि वह सरस्वती या श्रुतदेवी की ही प्रतिमा है । यह स्पष्ट है कि जैनों में प्रारम्भिक काल में सरस्वती की श्रुतदेवी के रूप में ही उपासना की जाती थी । अन्य परम्पराओं में भी उसे वाक्देवी कहा ही गया है, यद्यपि भगवतीसूत्र के नवम् शतक के ३३ वें उद्देशक के १४९ सूत्र में 'सरस्वती' शब्द आया है । किन्तु वहाँ वह जिनवाणी का विशेषण ही है । इसी शतक के इसी उद्देशक के १६३ वें सूत्र में भी ''सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ धम्मं परिकहेइ'' इससे वह जिनवाणी (श्रुतदेवता) ही सिद्ध होती है । इसके अतिरिक्त भगवतीसूत्र के १० वे शतक में असुरकुमारों में गन्धर्व-इन्द्र गीतरति की चार अग्रमहिषियों में भी एक का नाम 'सरस्वती' उल्लेखित है । इसी प्रकार ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुत स्कन्ध के पंचम वर्ग के ३२ अध्ययनों में ३२ वे अध्ययन का नाम भी 'सरस्वती' है । यहाँ एक देवी के रूप में ही उसका उल्लेख हैं, किन्तु ये सभी उल्लेख अति संक्षिप्त हैं । इसी क्रम में अंगसूत्रों में विपाकसूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध 'सुखविपाक' के दूसरे अध्ययन में ऋषभपुर नगर के राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की रानी का नाम भी सरस्वती के रूप में उल्लेखित है, किन्तु भगवतीसूत्र के नवम शतक में उल्लेखित जिनवाणी के साथ इसका कोई साम्य नहीं देखा जा सकता है । यह तो केवल एक सामान्य स्त्री है । यहाँ मात्र नाम की समरूपता ही है । स्थानांगसूत्र में भी गन्धर्वों के इन्द्र गीतरति की पत्नी का नाम सरस्वती उल्लेखित है, जो भगवतीसूत्र के १० वें शतक के उल्लेख की ही पुष्टि करता है ।

इन आधारों पर हम इतना ही कह सकते हैं कि अर्धमागधी आगम साहित्य में प्रारम्भ में सरस्वती का उल्लेख मूलतः जिनवाणी या श्रुत के विशेषण के रूप में ही हुआ है । यद्यपि अर्धमागधी आगम साहित्य में 'नमो सुयदेवयाए भगवईए' इतना ही पाठ है । किन्तु यह श्रुतदेवता सरस्वती रही होगी, ऐसी कल्पना की जा सकती है क्योंकि भगवतीसूत्र (९/३३/१४९ तथा १६३) में सरस्वती-जिनवाणी के एक विश्लेषण के रूप में उल्लेखित है । सर्वप्रथम जिनवाणी रूप श्रुत (सुय) को स्थान मिला और उसे 'नमो सुयस्स' कहकर प्रणाम भी किया गया । कालान्तर में इसी श्रुत के अधिष्ठायक देवता के रूप में श्रुतदेवी की कल्पना आई होगी और उस श्रुतदेवी को भगवती कहकर प्रणाम किया गया । किन्तु यह सब एक कालक्रम में ही हुआ होगा। श्रुत से श्रुतदेवता और श्रुतदेवता से सरस्वती का समीकरण एक कालक्रम में हुआ होगा ।

इसी क्रम में श्रुतदेवता को भगवती विशेषण भी मिला और इस प्रकार श्रुतदेवी को भगवती सरस्वती मान लिया गया । ज्ञातव्य है कि 'भगवती' और 'भगवान' शब्द का प्रयोग भी अर्धमागधी आगम साहित्य में मात्र आदरसूचक ही रहा है वह देवत्व का वाचक नहीं है । क्योंकि प्रश्नव्याकरणसूत्र में अहिंसा को 'भगवती' (**अहिंसाए भगवईए**) और सत्य को 'भगवान' (**सच्चं खु भगवं**) कहा गया है । यहाँ ये व्यक्तिपरक नहीं मात्र अवधारणाएँ हैं । अतः प्राचीन काल में भगवती श्रुतदेवी भी मूलतः जिनवाणी के रूप में मान्य की गई होगी । यहाँ 'नमो' शब्द भी उसके प्रति आदर भाव प्रकट करने के लिए ही है - क्योंकि ऐसा आदरभाव तो '**नमो बंभीए लिवीए**' कहकर ब्राह्मी लिपि के प्रति भी प्रकट किया गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह कोई देव या देवी नहीं है ।

किन्तु यह ज्ञातव्य है कि जब जैन देवमण्डल में शासन-देवता एवं विद्या-देवियों का प्रवेश हुआ तो उसके परिणाम स्वरूप 'श्रुत-देवता' की कल्पना भी एक 'देवी' के रूप में हुई और उसका समीकरण हिन्दू देवी सरस्वती से बैठाया गया । यह कैसे हुआ ? इसे थोड़े विस्तार से समझने की आवश्यकता है । जिनवाणी 'रसवती' होती है । अतः सर्वप्रथम सरस्वती को जिनवाणी का विशेषण बनाया गया (स+रस+वती) । फिर सरस्वती श्रुतदेवता या श्रुतदेवी बनी और अन्त में वह सरस्वती नामक एक देवी के रूप में मान्य हुई । अज्ञान का नाश करने वाली देवी के रूप में उसकी उपासना प्रारम्भ हुई । भगवतीसूत्र की लिपिकार (लहिये) की अन्तिम प्रशस्ति गाथाओं ईसा की ५ वीं शती पश्चात् हमें एक गाथा उपलब्ध होती है - जिसमें सर्वप्रथम गौतम गणधर को, फिर व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) को, तदनन्तर द्वादश गणिपिटक को नमस्कार करके, अन्त में श्रुतदेवी को उसके विशेषणों सहित न केवल नमस्कार किया गया, अपितु उससे मति-तिमिर (मति-अज्ञान) को समाप्त करने की प्रार्थना की गई । वह गाथा इस प्रकार है-

कुमुय सुसंठियचलणा अमलिय कोंरट विंट संकासा ।
सुयदेवयाभगवती मम मतितिमिरं पणासेउ ॥

- भगवतीसूत्र के लिपिकार की उपसंहार गाथा-२

कुमुद के ऊपर स्थित चरणवाली तथा अम्लान (नहीं मुरझाई हुई) कोरंट की कली के समान, भगवती श्रुतदेवी मेरे मति (बुद्धि अथवा मति-अज्ञानरूपी) अन्धकार को विनष्ट करे ।

वियसियअरविंदकरा नासियतिमिरा सुयाहिया देवी ।
मज्झं पि देउ मेहं बुहविबुहणमंसिया णिच्चं ॥

जिसके हाथ में विकसित कमल है, अथवा विकसित कमल जैसे करतलवाली, जिसने अज्ञानान्धकार का नाश किया है, जिसको बुध (पण्डित) और विबुधों (विशेष प्रबुद्ध) ने सदा नमस्कार किया है, ऐसी श्रुताधिष्ठात्री देवी मुझे भी बुद्धि (मेघा) प्रदान करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुयदेवयाए णमिमो जीए पसाएण सिक्खियं नाणं ।
अण्णं पवयणदेवी संतिकरी तं नमसांमि ॥

जिसकी कृपा से ज्ञान सीखा है, उस श्रुतदेवता को प्रणाम करता हूँ तथा शान्ति करने वाली अन्य प्रवचनदेवी को नमस्कार करता हूँ ।

सुयदेवा य जक्खो कुंभधरो बंभसंति वेरोट्टा ।
विज्जा य अंतहुंडी देउ अविग्घं लिहंतस्स ॥

श्रुतदेवता, कुम्भधरयक्ष, ब्रह्मशान्तियक्ष, वैरोटयादेवी, विद्यादेवी और अन्तहुंडीयक्ष, लेखक के लिए अविघ्न (निर्विघ्नता) प्रदान करे ।

भगवती की लिपिकार (लेखक) की इस प्रशस्ति में श्रुतदेवता से अज्ञान के विनाश तथा श्रुतलेखन कार्य की निर्विघ्नता की कामना की गई।

यद्यपि अर्धमागधी आगम साहित्य की यह प्रशस्ति श्रुतदेवी या ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सरस्वती का उल्लेख करती है, किन्तु हमे यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि यह ईसा की पांचवी से दसवीं शताब्दी के मध्य हुआ है और जिनवाणी से ही श्रुत, श्रुतदेवी और सरस्वती की अवधारणाएँ विकसित हुई है ।

यहाँ हमें यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अर्धमागधी आगम साहित्य मात्र अंग, उपांग आदि अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य पैंतालीस या बत्तीस श्वेताम्बर परम्परा के मान्य आगम ग्रन्थों तक ही सीमित नहीं है । आगमों की निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियां भी इसी के अन्तर्गत आती है, क्योंकि इनकी भाषा भी महाराष्ट्री-प्रभावित अर्धमागधी ही है । अतः आगे हम निर्युक्ति और भाष्यों के आधार पर भी श्रुतदेवी या सरस्वती की अवधारणा पर चर्चा करेंगे ।

जहाँ तक अर्धमागधी आगमों के इस व्याख्या साहित्य का प्रश्न है, उसमें निर्युक्ति साहित्य एवं भाष्य साहित्य में मंगलाचरण के रूप में हमें कहीं भी श्रुतदेवता की स्तुति की गई हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिला । इनमें मात्र चार सरस्वतियों के उल्लेख हैं - १. गीतरति गन्धर्व की पत्नी, २. ऋषभपुर के राजा की पत्नी, ३. सरस्वती नामक नदी और, ४. आचार्य कालक की बहन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरस्वती । किन्तु इन चारों का सम्बन्ध सरस्वती देवी से नहीं है । जहाँ तक भाष्य शब्द साहित्य की टीकाओं का प्रश्न है, अभिधानराजेन्द्रकोष में पंचकल्प भाष्य की टीका को उद्धृत करके श्रुतदेवता शब्द को व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि श्रुत का अर्थ है अर्हत् प्रवचन, उसका जो अधिष्ठायक देवता होता है, उसे श्रुतदेवता कहते हैं । इस सम्बन्ध में अभिधानराजेन्द्रकोष में कल्पभाष्य से निम्न गाथा भी उद्धृत की है-

सव्वं च लक्खणो-वेयं, समहिदुंति देवता ।
सुत्तं च लक्खणोवेयं, जेय सव्वण्णु-भासियं ॥

यद्यपि मुझे बृहत्कल्पभाष्य में यह गाथा नहीं मिली । संभवतः पंचकल्पभाष्य की होगी, क्योंकि उन्होंने यदि इसे उद्धृत किया है तो इसका कोई आधार होना चाहिए । संभवतः यह पंचकल्पभाष्य से उद्धृत की गई हो ! इसमें श्रुत का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि जो सर्वज्ञभाषित है, वह श्रुत है और जो उसे सर्वलक्षणों से जानता है या अधीत करता है, वह श्रुतदेवता है । भाष्यसाहित्य में श्रुतदेवता या सरस्वती का अन्य कोई उल्लेख है, ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है । यद्यपि भाष्यसाहित्य से किंचित् परवर्ती पंचसंग्रह नामक ग्रन्थ के पंचमद्वार रूप पाँचवे भाग में श्रुत देवता के प्रसाद की चर्चा हुई है । अभिधानराजेन्द्रकोष में उसकी निम्न गाथा उद्धृत की गई है -

सुयदेवता भगवई, नाणावरणीयकम्मसंघायं ।
तेसिं खवेउ सययं, जेसिं सुयसायरे भत्ती ॥

इस गाथा का तात्पर्य यह है कि - "जिसकी श्रुत सागर में भक्ति है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म के समूह को श्रुत देवता सतत रूप से क्षीण करे।" इस गाथा की वृत्ति में टीकाकार ने यह स्पष्ट किया है कि यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि वस्तुतः कर्मों का क्षय श्रुतदेवता के कारण से नहीं, अपितु श्रुतदेवता के प्रति रही हुई भक्ति-भावना के कारण होता है । इसी प्रसंग में वृत्तिकार ने श्रुत के अधिष्ठायक देवता को व्यन्तर देवयोनि का बताया है और यह कहा है कि वह साधक के ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षय करने में समर्थ नहीं है । श्वेताम्बर परम्परा में प्रतिक्रमणसूत्र में पांचवे आवश्यक में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतदेवता के निमित्त कायोत्सर्ग किया जाता है **'सुयदेवयाए करेमि काउसग्गं'** वस्तुतः वह कायोत्सर्ग भी श्रुतभक्ति का ही एक रूप है और यह ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षय का निमित्त भी होता है, क्योंकि जैन सिद्धान्त व्यक्ति के कर्मों का क्षय का हेतु तो स्वयं के भावों को ही मानता है । फिर भी देवों से इस प्रकार की प्रार्थनाएँ जैन ग्रन्थों में अवश्य मिलती है । जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं, भगवतीसूत्र की लेखक प्रशस्ति में भी अज्ञानरूपी तिमिर की नाश की प्रार्थना श्रुतदेवता से की गई है ।

श्वेताम्बर परम्परा में मान्य अर्धमागधी आगमों में महानिशीथ सूत्र सबसे परवर्ती माना जाता है । इसके सम्बन्ध में मूलभूत अवधारणा यह है कि इसकी एकमात्र दीमकों द्वारा भक्षित प्रति के आधार पर आचार्य हरिभद्र (लगभग आठवीं शती) ने इसका उद्धार किया । चाहे मूल ग्रन्थ किसी भी रूप में रहा हो, किन्तु इसका वर्तमानकालीन स्वरूप तो आचार्य हरिभद्र के काल का है, यद्यपि इसका कुछ अंश प्राचीन हो सकता है, किन्तु कौन सा अंश प्राचीन है और कौन सा परवर्ती है, यह निर्णय पर पाना कठिन है। अर्धमागधी आगमों में यह एक ऐसा ग्रन्थ है जो स्पष्ट रूप से श्रुतदेवता (श्रुतदेवी) का उल्लेख करता है । इसके प्रारम्भिक अध्ययन में ३ गद्यसूत्रों के पश्चात् ४ से ५० तक गाथाएँ है । उसके पश्चात् पुनः ५१ वां गद्यसूत्र है। उसमें कोष्टबुद्धि आदि ज्ञानियों को नमस्कार करने के पश्चात् **'नमो भगवतीए सुयदेवाए सिज्झउ में सुयाहिया विज्जा'** इस रूप में श्रुतदेवता (श्रुतदेवी) को नमस्कार करके उससे यह प्रार्थना की गई है कि सूत्र अधीत विद्या मुझे सिद्ध हो । पुनः यह भी कहा गया है कि- **'एसा विज्जा सिद्धंतिएहिं अक्खरेहिं लिखिया एसा य सिद्धंतिया लिवी अमुणियसमयसब्भावाणं सुयधरेहिं णं न पन्नवेज्जा तह य कुसीलाणं च'** - यह लिखित विद्या श्रुतधरों को ही प्रज्ञप्त करे कुशीलों को नहीं । पुनः महानिशीथसूत्र के अन्तिम आठवें अध्याय में चौबीस तीर्थंकरों और तीर्थ को नमस्कार करने के पश्चात् **'नमो सुयदेवयाए भगवईए'** कहकर श्रुतदेवता (श्रुतदेवी) को नमस्कार किया गया है । श्रुतदेवता कोई देवता या देवी है, यह बात आगमिक परम्परा में कालान्तर में ही स्वीकृत हुई है, क्योंकि जैसा हमने पूर्व में कहा है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन आगमों में तो सरस्वती या श्रुतदेवता जिनवाणी ही रही है । महानिशीथसूत्र में ही सर्वप्रथम यह कहा गया कि श्रुतदेवता मेरी अधीत विद्या को सिद्धि प्रदान करें । श्रुतदेवता एक देवी है, ऐसा उल्लेख सर्वप्रथम महानिशीथसूत्र के उद्धारक आचार्य हरिभद्र (८ वी शती) ने अपने ग्रन्थ पंचाशक प्रकरण में किया है। उसमें कहा गया है कि-

रोहिणि अंबा तह मंदउण्णया सव्वसंपयासोक्खा ।
सुयसंतिसुरा काली सिद्धाईया तहा चेव ॥

रोहिणी, अम्बा, मन्दपुण्यिका, सर्वसम्पदा, सर्वसौख्या, श्रुतदेवता, शान्तिदेवता, काली, सिद्धायिका - ये नौ देवता है । इसकी टीका में भी श्रुतदेवता की आराधना हेतु तप करने की विधि बताते हुए कहा गया है कि श्रुतदेवता की आराधना हेतु किए जाने वाले तप में ग्यारह एकादशी पर्यन्त उपवासपूर्वक मौन व्रत रखना चाहिए तथा श्रुतदेवता की पूजा करनी चाहिए। ज्ञातव्य है कि पूर्व में उल्लेखित पंचकल्पभाष्य में भी श्रुतदेवता को व्यन्तर जाति के देव बताया गया है ।

मेरी जानकारी में अर्धमागधी आगम साहित्य में इसके अतिरिक्त श्रुतदेवी या सरस्वती का कोई उल्लेख नहीं । उसमें अनेक जाति के देव-देवियों के उल्लेख तो हैं, किन्तु सरस्वती या श्रुतदेवी की मात्र जिनवाणी के रूप में ही चर्चा है, किसी देव या देवी के रूप में नहीं है । वह व्यन्तर देवी है, यह उल्लेख भी परवर्ती है । यद्यपि जैन सरस्वती की विश्व में सबसे प्राचीन प्रतिमा मथुरा से उपलब्ध होने से पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर इतना तो कहा जा सकता है कि जैनों में सरस्वती या श्रुतदेवी की अवधारणा प्राचीन किन्तु साहित्यिक उल्लेख परवर्ती युग के हैं । सर्वप्रथम हमें आगमेतरग्रन्थ पउमचरियं (विमलसूरि) एवं अंगविज्जा में उसके एक देवी के रूप में उल्लेख मिलते हैं । पउमचरियं (३/५९) में सरस्वती का उल्लेख बुद्धिदेवी के रूप में हुआ है जो इन्द्र की आज्ञासे तीर्थकरमाता की सेवा करती है । अंगविज्जा (५८ पृ. २२३) में भी उसे एक देवी माना गया है । इन दो उल्लेखों बाद सरस्वती का सीधा उल्लेख हरिभद्र के ८वीं शती के ग्रन्थों में ही मिलता है। अंगविज्जा और पउमचरियं का काल लगभग ईसा की दूसरी का माना गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(II)

जैनधर्म में सरस्वती

हम अपने पूर्व आलेख - ''अर्धमागधी आगम साहित्य में श्रुतदेवी सरस्वती'' में स्पष्ट रूप से यह देख चुके हैं कि श्वेताम्बर परम्परा में मान्य अर्धमागधी आगमों में तथा उनकी निर्युक्तियों और भाष्यों तक भी एक देवी के रूप में सरस्वती की अवधारणा अनुपस्थित है। भगवतीसूत्र में सरस्वती (स+रस+वती) पद का प्रयोग मात्र जिनवाणी के विशेषण के रूप में हुआ है और उस जिनवाणी को रस से युक्त मानकर यह विशेषण दिया गया है। यद्यपि उसमें भगवती श्रुतदेवता (सुयदेवयाए भगवइए) के कुछ प्रयोग मिले हैं, परन्तु वे भी जिनवाणी के अर्थ में ही है। जिनवाणी के साथ देवता और भगवती शब्दों का प्रयोग मात्र आदरसूचक हैं। किसी 'देवी' की कल्पना के रूप में नहीं है। श्रुतदेवता (श्रुतदेवी) की कल्पना प्राचीन स्तर के आगमों की अपेक्षा कुछ परवर्ती है। सर्वप्रथम पउमचरियं (ई. २री शती) में ही, श्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी को देवी कहा गया है, जो इन्द्र के आदेश से तीर्थंकर माता की सेवा करती हैं (३/५९)। इसके साथ ही अंगविज्जा (लगभग २री शती) में भी बुद्धि की देवता के रूप में 'सरस्वती' का उल्लेख है।[१] जबकि जैन देवमण्डल, जिसमें सोलह विद्यादेवियाँ, चौबीस यक्ष, चौबीस यक्षियाँ (शासनदेवता), अष्ट या नौ दिक्पाल, चौंसठ इन्द्र, लोकान्तिकदेव, नवग्रह, क्षेत्रपाल (भैरव) और चौंसठ योगनियाँ भी सम्मिलित हैं, कहीं भी सरस्वती का उल्लेख नहीं है। यह आश्चर्यजनक इसलिए है, अनेक हिन्दू देव-देवियों को समाहित करके जैनों ने जिस देवमण्डल का विकास किया था, उसमें श्रुतदेवी सरस्वती को क्यों स्थान नहीं दिया गया ? जबकि मथुरा से उपलब्ध जैन स्तूप की पुरातात्विक सामग्री में विश्व की अभिलेखयुक्त प्राचीनतम जैन श्रुतदेवी या सरस्वती की प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि ईसा की द्वितीय 'शताब्दी से जैनों में सरस्वती

---

१. एकाणंसा सिरी, बुद्धि मेधा कित्ती सरस्वती एवमादियाओ उवलद्धाओ भवंति। अध्याय ५८, पृ. २२३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की आराधना प्रचलित रही होगी । क्योंकि इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कोटिकगण की वज्रीशाखा के जैनाचार्य द्वारा हुई है और 'सरस्वती' शब्द का भी उल्लेख है । इसके बाद श्वेताम्बर परम्परा में श्रुतदेवी के रूप में सरस्वती के उल्लेख हरिभद्र (८ वी शती) और उनके बाद आचार्यों के काल से ही मिलते हैं। तीसरी-चौथी शती से लेकर सातवीं तक हमें सरस्वती के उल्लेख नहीं मिले। पंचकल्पभाष्य की टीका में उसे व्यन्तर देवी के रूप में उपस्थित किया गया, जो अधिक सम्मानप्रद नहीं था, किन्तु हरिभद्र ने उसकी उपासना विधि में उसे वैराट्या, रोहिणी, अम्बा, सिद्धायिका, काली आदि शासनदेवियों के समकक्ष दर्जा देकर उसका महत्त्व स्थापित किया है, क्योंकि काली, अम्बा, सिद्धायिका आदि को जैनधर्म में शासनदेवता का सम्मान प्राप्त है । श्वेताम्बर परम्परा में श्रुतदेवी सरस्वती की उपासना-विधि के साहित्यिक प्रमाण लगभग ८ वी शती से मिलने लगते हैं ।

जहाँ तक सरस्वती की प्रतिमा के पुरातात्विक प्रमाणों का प्रश्न है, वे प्रथमतया तो मथुरा से उपलब्ध सरस्वती की प्रतिमा के आधार पर ईसा की द्वितीय शती से मिलने लगते हैं, किन्तु जैन परम्परा में बहुत ही सुन्दर सरस्वती प्रतिमाएँ पल्लू (बिकानेर) और लाडनू आदि से उपलब्ध हैं, जो ९वीं, १०वीं शती के बाद की हैं ।

जहाँ तक अचेल दिगम्बर परम्परा का प्रश्न हैं, उसमें भी श्रुतदेवी सरस्वती के उल्लेख पर्याप्त परवर्ती हैं । कसायपाहुड, षट्खण्डागम, मूलाचार, भगवती आराधना, तिलोयपन्नत्ती, द्वादश अनुप्रेक्षा (बारसाणुवेक्खा) एवं कुन्दकुन्द के ग्रन्थ समयसार, नियमसार, पंचास्तिकायसार, प्रवचनसार आदि में हमें कहीं भी आद्यमंगल में श्रुतदेवता सरस्वती का उल्लेख नहीं मिला है। यहाँ तक कि तत्त्वार्थ की टीकाओं जैसे सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक में तथा षट्खण्डागम की धवलाटीका और महाबन्ध टीका में भी मंगल रूप में श्रुतदेवी सरस्वती का उल्लेख नहीं है । महाबन्ध और उसकी टीका में मंगल रूप में जिन ४४ लब्धिपदों का उल्लेख है - उनमें भी कहीं सरस्वती या श्रुतदेवता का नाम नहीं है । ज्ञातव्य है ये ही लब्धिपद, श्वेताम्बर परम्परा में सूरिमन्त्र के रूप में तथा प्रश्नव्याकरण नामक अंग आगम में भी उपलब्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं । जिनमें अनेक प्रकार के लब्धिधरो एवं प्रज्ञाश्रमणों के उल्लेख हैं, किन्तु उनमें भी श्रुतदेवी सरस्वती का कोई उल्लेख नहीं है । विद्वत्वर्ग के लिए यह विचारणीय और शोध का विषय है ।

जहाँ तक मेरी जानकारी है, दिगम्बर परम्परा में सर्वप्रथम पं. आशाधर (१३ वीं शती) ने अपने ग्रन्थ सागारधर्मामृत में श्रुतदेवता की पूजा को जिनपूजा के समतुल्य बताया है । वे लिखते हैं-

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽञ्जसा जिनं ।
तं किञ्चिदन्तरं प्राहुरात्ता हि श्रुतदेवयोः ॥२/४४॥

मेरी जहाँ तक जानकारी है, दिगम्बर परम्परा में कुन्दकुन्द प्रणीत मानी जाने वाली दस भक्तियों में श्रुतभक्ति तो है, किन्तु वह श्रुतदेवी सरस्वती की भक्ति है, यह नहीं माना जा सकता है । 'श्रुतदेवयोः' यह पद भी सर्वप्रथम सागार धर्मामृत में ही प्राप्त हो रहा है । मेरी दृष्टि में आचार्य मल्लिषेण विरचित 'सरस्वती मन्त्रकल्प' उस परम्परा में सरस्वती उपासना का प्रथम ग्रन्थ है । मेरी दृष्टि में यह ग्रन्थ बारहवीं शती के पश्चात् का ही है ।

जहाँ तक श्वेताम्बर परम्परा का प्रश्न है, मेरी जानकारी में उसमें सर्वप्रथम 'सरस्वतीकल्प' की रचना आचार्य बप्पभट्टीसूरि (लगभग १० वीं शती) ने की है । यह कल्प विस्तार से सरस्वती की उपासना विधि तथा तत्सम्बन्धी मन्त्रों को प्रस्तुत करता है । आचार्य बप्पभट्टीसूरि का काल लगभग १० वीं शती माना जाता है । श्वेताम्बर परम्परा में सरस्वती का एक अन्य स्तोत्र साध्वी शिवार्या का मिलता है इसका नाम 'पठितसिद्ध सारस्वतस्तव' है । साध्वी शिवार्या का काल क्या है ? यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। इसके पश्चात् श्वेताम्बर परम्परा में जिनप्रभसूरि (लगभग १३ वीं - १४ वीं शती) का श्रीशारदास्तवन मिलता है, यह आकार में संक्षिप्त है, इसमें मात्र ९ श्लोक हैं । इसके अतिरिक्त एक अन्य श्रीसरस्वती स्तोत्र उपलब्ध होता है, इसमें मात्र १७ श्लोक हैं । इसके कर्ता भी अज्ञात हैं । इनमें बप्पभट्टीसूरि का सरस्वती कल्प ही ऐसा है, जिसमें सरस्वती उपासना की समग्र पद्धति दी गई है । यद्यपि यह पद्धति वैदिक परम्परा से पूर्णतः प्रभावित प्रतीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती है ।

जहाँ तक सरस्वती के प्रतिमा लक्षणों का प्रश्न है । सर्वप्रथम खरतरगच्छ के वर्धमानसूरि (१४वीं शती) द्वारा रचित 'आचार दिनकर' नामक ग्रन्थ की प्रतिष्ठाविधि में निम्न दो श्लोक मिलते हैं -

ॐ ह्रीं नमो भगवती ब्रह्माणि वीणा पुस्तक ।
पद्माक्षसूये हंसवाहने श्वेतवर्णे इह षष्ठि पूजने आगच्छ ॥

पुनः-

श्वेतवर्णा श्वेतवस्त्रधारिणी हंसवाहना श्वेतसिंहासनासीना चतुर्भुजा ।
श्वेताब्जवीणालङ्कृता वामकरा पुस्तकमुक्ताक्षमालालङ्कृतदक्षिणकरा ! ।

- आचार दिनकर प्रतिष्ठाविधि

जहाँ तक दिगम्बर परम्परा का प्रश्न है, उस परम्परा के ग्रन्थ 'प्रतिष्ठासारोद्धार' में सरस्वती के सम्बन्ध में निम्न श्लोक उपलब्ध हैं ।

वाग्वादिनी भगवति सरस्वती ह्रीं नमः, इत्यनेन मूलमन्त्रेण वेष्टयेत् ।
ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः इति वाग्देवतां स्थापयेत् ॥

- प्रतिष्ठासारोद्धार

दोनों परम्पराओं में मूलभूत अन्तर यह है कि श्वेताम्बर परम्परा में सरस्वती का वाहन हंस माना गया है, जबकि दिगम्बर परम्परा में मयूर । हंस विवेक का प्रतीक है सम्भवतः इसीलिए श्वेताम्बर आचार्यों ने उसे चुना हो । फिर भी इतना निश्चित है कि सरस्वती इन प्रतिमा लक्षणों पर वैदिक परम्परा का प्रभाव है । साथ ही उससे समरूपता भी है । मथुरा से प्राप्त जैन सरस्वती की प्रतिमा में मात्र एक हाथ में पुस्तक हैं, जबकि परवर्ती जैन सरस्वती मूर्तियों में वीणा प्रदर्शित हैं ।

C/o. प्राच्य विद्यापीठ
दुपाडा रोड,
शाजापुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवी आर्यावती का चित्र
(मथुरा)
लगभग २री शती.

अभिलेख का हिन्दी रूपान्तरण

वर्ष ५४ (शक् संवत्) के चतुर्थ मास (कार्तिक) की दशमी के सरस्वती की प्रतिमा सिंह के पुत्र गोवा ने आर्यहस्त-हस्ती के शिष्य गणी आर्य माघहस्ति के शिष्य वाचक आर्य देव केट्टिय स्थानीयकुल के सदुपदेश से सर्व लोगो के कल्याणार्थ स्थापित की ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री बालचन्द्राचार्य एवं श्री ऋद्धिसागरोपाध्याय रचित
निर्णय प्रभाकर : एक परिचय

म. विनयसागर

ग्रन्थ का नाम 'निर्णय प्रभाकर' देखकर सोचा कि यह किसी शास्त्रीय चर्चा का ग्रन्थ होगा किन्तु, कर्त्ता के रूप में श्री बालचन्द्राचार्य एवं श्री ऋद्धिसागरोपाध्याय देखकर विचार आया कि सम्भवतः खरतरगच्छ की जो दसवीं मण्डोवरा शाखा श्री जिनमहेन्द्रसूरि से उद्भूत हुई थी, शायद उसी सम्बन्ध में चर्चा हो ।

सहसा विचार आया कि यह शाखाभेद के विचार-विमर्श का ग्रन्थ नहीं हो सकता, क्योंकि इसके प्रणेता श्री बालचन्द्राचार्य मण्डोवरा शाखा के समर्थक थे और श्री ऋद्धिसागरोपाध्याय बीकानेर की गद्दी के समर्थक थे । दोनों के अलग-अलग छोर थे । अतएव एक ही ग्रन्थ के दोनों प्रणेता नहीं हो सकते ।

तब फिर यह विचार हुआ कि इस ग्रन्थ को निकालकर अवश्य अवलोकन किया जाए । ग्रन्थ निकालकर देखा गया तो दिमाग चक्कर खा गया कि यह ग्रन्थ तो श्री झवेरसागरजी और श्री विजय राजेन्द्रसूरिजी के मध्य का है जो कि उनके विचार भेदों के कारण उत्पन्न हुआ हो । सहसा विचार कौंधा कि तपागच्छ के अनेकों उद्भट विद्वान होते हुए भी खरतरगच्छ के विद्वानों को निर्णय देने के लिए क्यों पञ्च बनाया गया और उनसे निर्णय देने के लिए कहा गया ? वास्तव में खरतरगच्छ के दोनों विद्वान अपने-अपने विषय के प्रौढ़ विद्वान थे और गच्छीय संस्कारों के पोषक होते हुए भी माध्यस्थ्य, सामञ्जस्य और समन्वय को प्रधानता देते थे । उनके हृदय में गच्छ का कदाग्रह नहीं था किन्तु शास्त्रीय प्ररूपणा का आधार और अवलम्बन था । अतः इन दोनों निर्णायकों का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है ।

बालचन्द्राचार्यः- खरतरगच्छ के मण्डोवरा शाखा के अन्तर्गत आचार्य कुशलचन्द्रसूरि हुए, उनके शिष्य उपाध्याय राजसागरगणि, उनके शिष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय रूपचन्द्रगणि और उनके शिष्य श्री बालचन्द्राचार्य हुए। इनका जन्म संवत् १८९२ में हुआ था और दीक्षा १९०२ काशी में श्री जिनमहेन्द्रसूरि के करकमलों से हुई थी। दीक्षा नाम विवेककीर्ति था और श्री जिनमहेन्द्रसूरि के पट्टधर श्री जिनमुक्तिसूरि ने इनको दिङ्मण्डलाचार्य की उपाधि से सुशोभित किया था। ये आगम साहित्य और व्याकरण के धुरन्धर विद्वान थे। काशी के राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द इनके प्रमुख उपासक थे। अन्तिम अवस्था में तीन दिन का अनशन कर वैशाख सुदी ११, विक्रम् संवत् १९६२ को इनका स्वर्गवास हुआ था।

ऋद्धिसागरोपाध्यायः- महोपाध्याय क्षमाकल्याणजी की परम्परा में धर्मानन्दजी के २ प्रमुख शिष्य हुए- राजसागर और ऋद्धिसागर। इनके सम्बन्ध में कोई विशेष ऐतिह्य जानकारी प्राप्त नहीं है। ये उच्च कोटि के विद्वान् थे, साथ ही चमत्कारी और मन्त्रवादी भी थे। वृद्धजनों के मुख से यह ज्ञात होता है कि दैवीय मन्त्र शक्ति से इन्हें ऐसी विद्या प्राप्त थी कि वे इच्छानुसार आकाशगमन कर सकते थे। विश्व प्रसिद्ध आबू तीर्थ की अंग्रेजो द्वारा आशातना होते देखकर इन्होंने विरोध किया था। राजकीय कार्यवाही (अदालत) में समय-समय पर स्वयं उपस्थित होते थे और अन्त में तीर्थ रक्षा हेतु सरकार से ११ नियम प्रवृत्त करवाकर अपने कार्य में सफल हुए थे, ऐसा खीमेल श्रीसंघ के वृद्धजनों का मन्तव्य है। संवत् १९५२ में इनका स्वर्गवास हुआ था। जैन शास्त्रों और परम्परा के विशिष्ट विद्वान् थे। इन्हीं की परम्परा में इन्हीं के शिष्य गणनायक सुखसागर परम्परा प्रारम्भ हुई जो आज भी शासन सेवा में सक्रिय है।

प्रणेताओं का परिचय देने के बाद वादी और प्रतिवादी का परिचय भी देना आवश्यक है अतः वह संक्षिप्त में दिया जा रहा है :-

वादी-विजयराजेन्द्रसूरिः- इनका जन्म १८८२, भरतपुर में हुआ था। आपके पिता-माता का नाम केसरदेवी ऋषभदास पारख था। इनका जन्म नाम रत्नराज था। यति श्री प्रमोदविजयजी की देशना सुनकर रत्नराज ने हेमविजयजी से यति दीक्षा संवत् १९०४ में स्वीकार की। श्री पूज्य धरणेन्द्रसूरिजी से शिक्षा ग्रहण की और उनके दफ्तरी बने। १९२४ में आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद प्राप्त हुआ और विजयराजेन्द्रसूरि नामकरण हुआ । उसी वर्ष क्रियोद्धार किया । संवत् १९६३ पौष शुक्ला सप्तमी को आपका स्वर्गवास हुआ । सच्चारित्रनिष्ठ आचार्यों में गणना की जाती थी । अभिधानराजेन्द्रकोष इत्यादि आपकी प्रमुख रचनाएं हैं जो कि आज भी शोध छात्रों के लिए मार्गदर्शक का काम कर रही हैं । इन्हीं से त्रिस्तुतिक परम्परा विकसित हुई, मध्य भारत और राजस्थान में कई तीर्थों की स्थापना की । तपागच्छीय परम्परा में होते हुए भी इनकी परम्परा सौधर्म बृहद् तपागच्छीय परम्परा कहलाती है ।

प्रतिवादी-तपागच्छीय श्री मयासागरजी की परम्परा में गौतमसागरजी के शिष्य झवेरसागरजी थे । (इनके शिष्य श्री आनन्दसागरसूरि जो कि सागरजी के नाम से प्रसिद्ध थे ।) इनके बारे में अधिक जानकारी अन्यत्र उपलब्ध हो सकती है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि वादी और प्रतिवादी अर्थात् विजयराजेन्द्रसूरि और झवेरसागरजी में पाँच विषयों के लेकर मतभेद उत्पन्न हुआ, चर्चा हुई और अन्त में निर्णायक के रूप में इन दोनों ने श्री बालचन्द्राचार्य और ऋद्धिसागरजी को स्वीकार किया । क्योंकि ये दोनों आगमों के ज्ञाता और मध्यस्थ वृत्ति के धारक थे । लिखित रूप में कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है किन्तु उनके द्वारा विवादित पाँच प्रश्नों के उत्तर निर्णय के रूप में होने के कारण यह सम्भावना की गई है ।

रचना संवत् और स्थान

निर्णय-प्रभाकर ग्रन्थ की रचना प्रशस्ति में लिखा है कि श्री जिनमुक्तिसूरि के विजयराज्य में वैशाख शुक्ल अष्टमी के दिन विक्रम संवत् १९३० में इस ग्रन्थ की रचना रत्नपुरी में की गई । जो कि इस निर्णय के लिए श्रीसंघ के आग्रह पर, दोनों को बुलाने पर रतलाम आए थे । ग्रन्थ की रचना उपाध्याय बालचन्द्र और संविग्न साधु ऋद्धिसागर ने मिलकर की है ।

श्रीमच्छ्रीजिनमुक्तिसूरिगणभृद्वर्वर्ति चञ्चद्गुणा
स्फीत्युद्गीर्णयशा गणे खरतरे स्याद्वादनिष्णातधीः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज्ये तस्य सुखावहे गुणवतामभ्राग्निनन्दक्षितौ (१९३०)
वर्षे राघवलक्षपक्षदिवसे चन्द्राष्टमीसत्तिथौ ॥१॥

या वादि-प्रतिवादियस्य तमसा संपूरिता मालवे,
न्यायान्यायविवेककारकमुखात्प्राचीककुब्सन्निभा-
न्निर्णीतार्थकरात्तये कृतिसभा श्रीरत्नपुर्य्यामभू-
च्चिन्तालाभनिमीलिकालयकरी भव्याविभावोपमा ॥२॥

तस्यां पाठकबालचन्द्रगणिभिर्निर्णन्यभावंगतैः
संवेगिव्रतिऋद्धिसागरयुतैः श्रीसंघहूत्यागतैः ।
सिद्धान्तप्रतिघप्रभाकरनिभः सन्दर्भ एष प्रियः
ग्रन्थान्वीक्ष्य प्रकाशितो मतिमताम्बोधाय निर्णीय च ॥३॥

इन दोनों वादी प्रतिवादियों के मध्य में पाँच विषयों पर मतभेद था।

१. वादी :- परमेश्वर की जल चन्दन पुष्पादिक के द्वारा जो द्रव्य पूजा करते हैं उसका फल अल्पपाप और अधिक निर्जरारूप है ।

प्रतिवादी :- झवेरसागरजी का कथन है कि परमेश्वर की द्रव्यपूजा का फल शुभानुबन्धी प्रभूततर निर्जरारूप है ।

२. वादी:- प्रतिक्रमण और देववन्दन के मध्य में चौथी थुई नहीं कहना चाहिए, वैयावच्चगराणं आदि प्रमुख पाठ भी नहीं कहना चाहिए । सामायिक वन्दित्तु में ''सम्मदिट्ठिदेवा दिंतु समाहिं च बोहिं च'' इस पद में देव शब्द नहीं कहना । क्योंकि, सामायिक में चार निकाय के देवताओं के सहयोग की वांछा करना युक्त नहीं है ।

प्रतिवादी :- चतुर्थ स्तुति और वैयावच्चगराणं प्रमुख पाठ कहना चाहिए ।

३. वादी :- ललितविस्तराकार श्री हरिभद्रसूरि के समय निर्णय के सम्बन्ध में है । वादी ९६२ वर्ष मानते हैं ।

प्रतिवादी ५८५ वर्ष मानते हैं ।

४. वादी:- साधु को वस्त्ररंजन करना अर्थात् धोना अनाचार है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिवादी :- इनका कहना है कि यह अनाचार नहीं है ।

५. वादी:- पार्श्वस्थ आदि को सर्वथा वन्दन नहीं करना ।

प्रतिवादी :- जिसमें ज्ञानदर्शन हो और चारित्र की मलिनता हो उसको भी उस गुण के आश्रित वन्दन करना चाहिए ।

ये पाँचों प्रश्न जब निर्णायकों के समक्ष रखे गए तो उन्होंने पंचागी (मूल निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका) सहित आगम साहित्य को प्रमाण मानकर, उनके उद्धरण देकर अपना निर्णय दिया । आगम साहित्य और प्रकरण साहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी का भी उद्धरण नहीं दिया है । यत्र-तत्र नैयायिक शैली का भी प्रयोग किया है । उद्धरण के रूप में उल्लेखित ग्रन्थों के नाम अकारानुक्रम से दिए गए हैं :-

अङ्गचूलिका, अनुयोगद्वार सूत्र-सटीक, आचारदिनकर, आचारांग सूत्र-टीका सहित, आवश्यक सूत्र निर्युक्ति-बृहद्वृत्ति, आवश्यक सूत्र (नवकार मंत्र-लोगस्स-वैयावच्चगराणं पुक्खरवरदी-सिद्धाणं बुद्धाणं-अरिहंत चेइयाणं आदि) उत्तराध्ययन सूत्र-टीका, उपदेशमाला वृत्ति सहित, ओघनिर्युक्ति-सटीक, औपपातिक सूत्र, चतुःशरण प्रकीर्णक, चैत्यवन्दनभाष्य-अवचूरि-टीका, जीवाभिगम सूत्र-सटीक, ज्ञाताधर्मकथा सूत्र-टीका, कल्पसूत्र संदेहविषौषधी टीका, टीकाएं, नन्दीसूत्र, निशीथ सूत्र भाष्य-चूर्णि-टीका, पंचवस्तु टीका, पंचाशक टीका, पिण्डनिर्युक्ति, प्रज्ञापना सूत्र, प्रतिष्ठा कल्प-उमास्वाति, प्रतिष्ठाकल्प-पादलिप्ताचार्य, प्रतिष्ठाकल्प-श्यामाचार्य, प्रवचनसारोद्धार-सटीक, बृहद्कल्पसूत्र-भाष्य-निर्युक्ति-टीका सहित, भगवतीसूत्र-सटीक, मरणसमाधि, महानिशीथ सूत्र, योगशास्त्र, राजप्रश्नीय सूत्र, ललित विस्तरा (चैत्यवन्दन सूत्र टीका), व्यवहार भाष्य-चूर्णि-टीका, षडावश्यक लघु वृत्ति, सूत्रकृतांगसूत्र, स्थानांग सूत्र सटीक।

इन दोनों निर्णायकों ने अपने निर्णय में श्री झवेरसागरजी के मत को परिपुष्ट किया है और वादी श्री विजयराजेन्द्रसूरि के मत का निराकरण किया है ।

वृद्धजनों के मुख से मैने यह सुना है कि उक्त निर्णय के पश्चात् श्री विजयराजेन्द्रसूरिजी महाराज ने उक्त निर्णय को पूर्ण मान्यता देने और अपने मन्तव्य को बदलने का प्रयत्न किया । इसी समय मालवा और गोड़वाढ़ के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमुख श्रेष्ठियों ने आचार्यश्री से निवेदन किया कि "महाराज यह क्या कर रहे हो ? हमने आपके मन्तव्य को स्वीकार कर अपने समाज से विरोध लेकर अलग हुए हैं, ऐसी स्थिति में आप यदि मत बदलोगे तो हम उनके सामने कैसे सिर ऊँचा रखेंगे ?" ऐसा भक्त श्रावकों के मुख से सुनकर अपने मन्तव्य पर ही दृढ़ रहे और अपने विचारों को ही परिपुष्ट किया । तत्त्वं तु केवलीगम्यं ।

प्रति परिचय

इस प्रति की साइज ११.२ x २०.३ से.मी. है । पत्र ७१, पंक्ति १० तथा प्रति पंक्ति अक्षर लगभग ३८ हैं । लेखन प्रशस्ति निम्न प्रकार है :-

॥ग्रंथमान १५५१, इति निर्णयप्रभाकराभिधःसंदर्भः ॥ समाप्तोयः ॥ श्रीरस्तु कल्याणं ॥ श्रीमत्बृहत्खरतरगच्छे श्रीजिनचंद्रसूरिसाखायां: ॥ श्रीमत् १०८श्री ।पांप्रा। मुनिश्रीमद्देवविनयजीः ॥ तच्चरणारविंदमधुकर इवः । जवेरचंद्रेण लिपिकृतं दक्षिणप्रांत पूर्णाभिधनग्रात्पार्श्वभागे ग्रामीणतले ग्रामध्ये लिपीकृतं चतुर्मासचक्रेः ॥ संवत् १९३९ का मीती आश्विनशुक्ल नवम्यांतिथौ शुक्रवासरेः ॥ पुण्यपवित्र भवतु ॥ श्रेयभवतुः ॥श्री॥

इस ग्रन्थ में उद्धरण बहुत अधिक दिए गए हैं । प्राचीन हिन्दी भाषा में लिखा गया है । जहाँ-जहाँ राजस्थानी शब्दों का भी प्रयोग किया गया हैं। यह ग्रन्थ पठन एवं चिन्तनयोग्य है । आज के युग में भी यह ग्रन्थ प्रकाशन योग्य है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहिती :

नवां प्रकाशनो

१. **बृहत्कल्पसूत्र - पीठिका भाग १,** निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णिसमेत. प्र. प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी (PTS.) श्रेणि नं. 42/1, सं. विजयशीलचन्द्रसूरि, रूपेन्द्रकुमार पगारिया; ई. २००८, अमदावाद.

खंभात, पूना अने पाटणनी कुल चार ताडपत्र प्रतिओना आधारे तैयार करवामां आवेली चूर्णि-वाचना आ ग्रन्थरूपे प्रथमवार ज प्रकाशित थई छे. बीजी बधी बाबतोने गौण करीने शुद्ध वाचना तैयार करवानो प्रयास आमां थयो छे. अन्तमां गाथाक्रमरूप एक परिशिष्ट आपेल छे. बीजां विविध परिशिष्टो आपवानो उपक्रम छे ज, पण ते आगळना भागोमां यथावकाश आपवामां आवशे. आगळना विभागोमां चूर्णि साथे विशेष चूर्णि पण आपवानो उपक्रम छे.

◆

२. **उत्तरज्झयणाणि (भाग १, २)** (उपाध्यायश्रीकमलसंयम विरचित - सर्वार्थसिद्धिटीकासहित) प्रकाशक : भद्रंकर प्रकाशन, अमदावाद, वि.सं. २०६५

आ टीकानुं प्रथम संशोधन मुनिराजश्री जयन्तविजयजीए कर्युं हतुं. अने प्रकाशन वि. १९८४ मां 'लक्ष्मीचन्द्र जैन लायब्रेरी' द्वारा प्रताकारे चार भागमां करवामां आव्युं हतुं. तेनुं आ पुनः सम्पादन मंन्यास श्री वज्रसेन विजयजीए कर्युं छे. साध्वीजी श्रीचन्दनबालाश्रीजीए तेमने आ कार्यमां सहयोग आप्यो छे. प्रकाशन सुन्दर थयुं छे. उपयोगी परिशिष्टोथी ग्रन्थ अलंकृत बन्यो छे.

◆❖◆

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्राकारे रास लेता पुरुषनुं दृष्टिभ्रम पेदा करतुं चित्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org